ॐ अर्हं

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क - ६

[परम श्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री जोरावरमलजी महाराज की पुण्यस्मृति में आयोजित]

पंचम गणधर भगवत् सुधर्मस्वामि-प्रणीत : नवम अंग

अनुत्तरौपपातिकदशांग

[मूल पाठ, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, परिशिष्ट युक्त]

प्रेरणा
उपप्रवर्तक शासनसेवी स्व. स्वामी श्री व्रजलालजी महाराज

आद्य संयोजक तथा प्रधान सम्पादक
(स्व.) युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

अनुवादक-विवेचक
साध्वी मुक्तिप्रभाजी
एम.ए., पी-एच.डी.
[आचार्यसम्राट् श्री आनन्दऋषिजी म. की सुशिष्या और
महासती श्री उज्ज्वलकुमारीजी की अन्तेवासिनी]

प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क - ६

निर्देशन
साध्वी श्री उमरावकुंवर जी म.सा. 'अर्चना'

सम्पादक मण्डल
अनुयोगप्रवर्त्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
आचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री
श्री रतनमुनिजी
पं. शोभाचन्द्र जी भारिल्ल

सम्प्रेरक
मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'

संशोधन
श्री देवकुमार जैन

तृतीय संस्करण
वीर निर्वाण सं० २५२५
विक्रम सं० २०५६
ई० सन् १९९९

प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशन समिति
ब्रज-मधुकर स्मृति भवन
पीपलिया बाजार,
ब्यावर (राजस्थान)-३०५९०१
दूरभाष : ५००८७

मुद्रक
श्रीमती विमलेश जैन
अजन्ता पेयर कन्वर्टर्स
लक्ष्मी चौक, अजमेर-३०५००१

कम्प्यूटराइज्ड टाइप सैटिंग
सनराईज कम्प्यूटर्स
नहर मोहल्ला, अजमेर-३०५०११

मूल्य : ४१/- रुपये

युवाचार्य श्री मधुकर मुनीजी म. सा.



卐 महामंत्र 卐

णमो अरिहंताणं, णमो सिध्दाणं,
णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं,
णमो लोएसव्व साहूणं,
एसो पंच णमोक्कारो' सव्वपावपणासणो ॥
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

Published on the Holy Remembrance occasion

of

Rev. Guru Shri Joravarmalji Maharaj

Fifth Ganadhara Sudharma Swami Compiled
Ninth Anga

ANUTTAROVAVĀIA-DASĀO

[Original Text, Hindi Version, Notes, Annotations and Appendices etc.]

Proximity

Up-Pravartaka Shasansevi Rev.
(Late) Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Founder Editor

Yuvacharya (Late) Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator & Annotator

Sadhwi Muktiprabha
M.A., Ph D

Publishers

Shri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj.)

Jinagam Granthmala Publication No. 6

Direction
Sadhwi Shri Umrav Kunwar 'Archana'

Board of Editors
Anuyoga-Pravartaka Muni Sri Kanhaiyalal Ji 'Kamal'
Acharya Sri Devendra Muni Ji Shastri
Sri Ratan Muni Ji
Pandit Shobha Chand Ji Bharil

Promotor
Muni Sri Vinay Kumar 'Bhima'

Corrections and Supervision
Sri Dev Kumar Jain

Third Edition
Vir-Nirvana Samvat 2525
Vikram Samvat 2056
1999

Publishers
Sri Agam Prakashan Samiti,
Brij-Madhukar Smriti Bhawan,
Pipalia Bazar,
Beawar (Raj.) - 305 901
Phone - 50087

Printers
Smt. Vimlesh Jain
Ajanta Paper Converters
Laxmi Chowk, Ajmer-305 001

Laser Type Setting by :
Sunrise Computers
Ajmer - 305 001

Price : Rs. /- 41/-

समर्पण

जब आगम-स्वाध्यायप्रेमी जिज्ञासु-जन आगमों के अध्ययन के लिए तरसते थे, उस युग में सम्पूर्ण बत्तीसी का जिन्होंने एकाकी-असहायक रूप में अनुवाद करके संघ और शासन का महान् उपकार किया तथा अन्य विपुल साहित्य की रचना की — नूतन युग की प्रतिष्ठा की, जो अद्यतनकाल में आगम-युगप्रवर्तक थे,

जो सरलता, विनम्रता और विद्वत्ता के सजीव प्रतीक थे,

जिनका पावन स्मरण आज भी भव्य जनों की अन्तरात्मा में श्रद्धा और भक्ति उपजाता है,

उन परमपूज्य आचार्यवर्य

श्री अमोलकऋषिजी महाराज

के कर-कमलों में

– मधुकर मुनि

(प्रथम संस्करण से)

प्रकाशकीय

आचारांग १, २ भाग, उपासकदशांग, ज्ञाताधर्मकथांग, अन्तकृद्दशांग सूत्रों के तृतीय संस्करण प्रकाशित करने के अनन्तर अनुत्तरौपपातिकदशांगसूत्र का यह तृतीय संस्करण प्रकाशित कर रहे हैं।

अनुत्तरौपपातिकदशांगसूत्र अंगप्रविष्ट आगमों में नौवां अंग आगम है। इसमें जैन इतिहास के सुप्रसिद्ध सम्राट् श्रेणिक के जालि, मयालि आदि राजकुमारों, भद्रा सार्थवाही के पुत्र धन्य आदि के साधनामय जीवन का वर्णन किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कामभोगों का उपभोग मानव का ध्येय नही हो सकता है, किन्तु प्राणिमात्र के अन्तिम लक्ष्य परमनिश्रेयस्–मोक्षप्राप्ति के प्रति प्रयतशील रहने में ही मानवजीवन की सफलता है। यही उद्बोधन देना इस आगम का अभिधेय है। स्वाध्यायप्रेमियों को इसी दृष्टि से इसका अध्ययन करना चाहिये।

प्रस्तुत आगम का सम्पादन और अनुवाद विदुषी महासती श्री मुक्तिप्रभाजी म. एम.ए., पी–एच डी. ने पूर्ण परिश्रम से करके इसे सर्वांगीण बनाया है। साथ ही श्रमणसंघ के आचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी म. शास्त्री ने अपनी प्रस्तावना में शास्त्र के अन्तर्रहस्य को उद्घाटित कर पाठकों को मार्गदर्शन कराया है। एतदर्थ समिति साध्वीजी व आचार्यश्रीजी का सधन्यवाद आभार मानते हुए अभिनन्दन करती है।

मौलिक जैन साहित्य के प्रकाशन को ध्यान में रखकर स्व. युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी के कुशल निर्देशन में आगम बत्तीसी के प्रकाशन की योजना प्रारम्भ हुई थी। इस समय व श्रमसाध्य योजना को सफल बनाने में सभी प्रकार के सज्जनों का सहयोग मिला और प्रकाशन के साथ ही पाठकों का दायरा बढ़ता गया कि बिन्दु सिन्धु रूप में परिणत हो गई। इसी कारण समिति अपने सभी अप्राप्य होते जाने वाले ग्रन्थों के तृतीय संस्करण प्रकाशित करने के लिए प्रयत्न कर रही है।

हमें निवेदन करते हुए प्रसन्नता हो रही है कि आगम प्रकाशन का यह परमपुनीत अनुष्ठान सहयोगियों की प्रेरणा का सुफल है और सर्वतोभद्र स्व. युवाचार्यश्रीजी की शासनप्रभावना, आगमभक्ति और साहित्यानुराग की पावन भावना से ही हमें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

सागरमल बैताला	रतनचन्द मोदी	सायरमल चोरडिया	ज्ञानचंद बिनायकिया
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	महामन्त्री	मन्त्री

श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

आमुख

(प्रथम संस्करण से)

जैन धर्म, दर्शन व संस्कृति का मूल आधार वीतराग सर्वज्ञ की वाणी है। सर्वज्ञ अर्थात् आत्मदृष्टा। सम्पूर्ण रूप से आत्मदर्शन करने वाले ही विश्व का समग्र दर्शन कर सकते हैं। जो समग्र को जानते हैं, वे ही तत्त्वज्ञान का यथार्थ निरूपण कर सकते हैं। परमहितकर निःश्रेयस् का यथार्थ उपदेश कर सकते हैं।

सर्वज्ञों द्वारा कथित तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध —'आगमशास्त्र' या सूत्र के नाम से प्रसिद्ध है।

तीर्थंकरों की वाणी मुक्त सुमनों की वृष्टि के समान होती है, महान् प्रज्ञावान गणधर उसे सूत्र रूप में ग्रथित करके व्यवस्थित 'आगम' का रूप देते हैं।[१]

आज जिसे हम 'आगम' नाम से अभिहित करते हैं, प्राचीन समय में वे 'गणिपिटक' कहलाते थे —'गणिपिटक' में समग्र द्वादशांगी का समावेश हो जाता है। पश्चाद्वर्ती काल में इसके अंग, उपांग, मूल, छेद आदि अनेक भेद किये गये।

जब लिखने की परम्परा नहीं थी, तब आगमों को स्मृति के आधार पर गुरु-परम्परा से सुरक्षित रखा जाता था। भगवान् महावीर के बाद लगभग एक हजार वर्ष तक 'आगम' स्मृति-परम्परा पर चले आये थे। स्मृति-दुर्बलता, गुरु-परम्परा का विच्छेद तथा अन्य अनेक कारणों से धीरे-धीरे आगमज्ञान भी लुप्त होता गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र ही रह गया। तब देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने श्रमणों का सम्मेलन बुलाकर स्मृति-दोष से लुप्त होते आगमज्ञान को, जिनवाणी को सुरक्षित रखने के पवित्र उद्देश्य से लिपिबद्ध करने का ऐतिहासिक प्रयास किया और जिनवाणी को पुस्तकारूढ़ करके आने वाली पीढ़ी पर अवर्णनीय उपकार किया। यह जैन धर्म, दर्शन एवं संस्कृति की धारा को प्रवहमान रखने का अद्भुत उपक्रम था। आगमों का यह प्रथम सम्पादन वीर-निर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् सम्पन्न हुआ।

पुस्तकारूढ़ होने के बाद जैन आगमों का स्वरूप मूल रूप में तो सुरक्षित हो गया, किन्तु कालदोष, बाहरी आक्रमण, आन्तरिक मतभेद, विग्रह, स्मृति-दुर्बलता एवं प्रमाद आदि कारणों से आगम-ज्ञान की शुद्धधारा, अर्थबोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण होने से नहीं रुकी। आगमों के अनेक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ, पद तथा गूढ़ अर्थ छिन्न-विच्छिन्न होते चले गए। जो आगम लिखे जाते थे, वे भी पूर्ण शुद्ध नहीं होते थे, उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही रहे। अन्य भी अनेक कारणों से आगम-ज्ञान की धारा संकुचित होती गयी।

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में लोंकाशाह ने एक क्रान्तिकारी प्रयत्न किया। आगमों के शुद्ध और यथार्थ अर्थ-ज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुनः चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद पुनः उसमें भी व्यवधान आ गए। साम्प्रदायिक द्वेष, सैद्धान्तिक विग्रह तथा लिपिकारों की भाषाविषयक अल्पज्ञता आगमों की उपलब्धि तथा उनके सम्यक् अर्थबोध में बहुत बड़ा विघ्न बन गए।

---

१ अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा निउणा।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में जब आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो पाठकों को कुछ सुविधा हुई। आगमों की प्राचीन टीकाएँ, चूर्णि व निर्युक्ति जब प्रकाशित हुईं तथा उनके आधार पर आगमों का सरल व स्पष्ट भावबोध मुद्रित होकर पाठकों को सुलभ हुआ तो आगमज्ञान का पठन-पाठन स्वभावतः बढ़ा, सैकड़ों जिज्ञासुओं में आगम स्वाध्याय की प्रवृत्ति जगी व जैनेतर देशी-विदेशी विद्वान् भी आगमों का अनुशीलन करने लगे।

आगमों के प्रकाशन-सम्पादन-मुद्रण के कार्य में जिन विद्वानों तथा मनीषी श्रमणों ने ऐतिहासिक कार्य किया, पर्याप्त सामग्री के अभाव में आज उन सबका नामोल्लेख कर पाना कठिन है। फिर भी मैं स्थानकवासी परम्परा के कुछ महान् मुनियों का नाम ग्रहण अवश्य ही करूँगा।

पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज स्थानकवासी परम्परा के वे महान् साहसी व दृढ़ संकल्पबली मुनि थे, जिन्होंने अल्प साधनों के बल पर भी पूरे बत्तीस सूत्रों को हिन्दी में अनूदित करके जन-जन को सुलभ बना दिया। पूरे बत्तीसी का सम्पादन-प्रकाशन एक ऐतिहासिक कार्य था, जिससे सम्पूर्ण स्थानकवासी व तेरापंथी समाज उपकृत हुआ।

गुरुदेव पूज्य स्वामी श्री जोरावरमलजी महाराज का एक संकल्प —

मैं जब गुरुदेव स्व. स्वामी श्री जोरावरमलजी महाराज के तत्त्वावधान में आगमों का अध्ययन कर रहा था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्हीं के आधार पर गुरुदेव मुझे अध्ययन कराते थे। उनको देखकर गुरुदेव को लगता था कि यह संस्करण यद्यपि काफी श्रम-साध्य हैं, एवं अब तक के उपलब्ध संस्करणों में काफी शुद्ध भी हैं, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं। मूल पाठ में एवं उसकी वृत्ति में कहीं-कहीं अन्तर भी है, कहीं वृत्ति बहुत संक्षिप्त है।

गुरुदेव स्वामी श्री जोरावरमलजी महाराज स्वयं जैन-सूत्रों के प्रकाण्ड पंडित थे। उनकी मेधा बड़ी व्युत्पन्न व तर्कणा-प्रधान थी। आगम साहित्य की यह स्थिति देखकर उन्हें बहुत पीड़ा होती और कई बार उन्होंने व्यक्त भी किया कि आगमों का शुद्ध, सुन्दर व सर्वोपयोगी प्रकाशन हो तो बहुत लोगों का कल्याण होगा, कुछ परिस्थितियों के कारण उनका संकल्प, मात्र भावना तक सीमित रहा।

इसी बीच आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज, जैनधर्मदिवाकर आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज, पूज्य श्री घासीलालजी महाराज आदि विद्वान् मुनियों ने आगमों की सुन्दर व्याख्याएँ व टीकाएँ लिखकर अथवा अपने तत्त्वावधान में लिखवाकर इस कमी को पूरा किया है।

वर्तमान में तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य श्री तुलसी ने भी यह भगीरथ प्रयत्न प्रारम्भ किया है और अच्छे स्तर से उनका आगम-कार्य चल रहा है। मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल' आगमों की वक्तव्यता को अनुयोगों में वर्गीकृत करने का मौलिक एवं महत्त्वपूर्ण प्रयास कर रहे हैं।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा के विद्वान् श्रमण स्व. मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम-सम्पादन की दिशा में बहुत ही व्यवस्थित व उत्तमकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। उनके स्वर्गवास के पश्चात् मुनि श्री जम्बूविजयजी के तत्त्वावधान में यह सुन्दर प्रयत्न चल रहा है।

उक्त सभी कार्यों का विहंगम अवलोकन करने के बाद मेरे मन में एक संकल्प उठा। आज कहीं तो आगमों का मूल मात्र प्रकाशित हो रहा है और कहीं आगमों की विशाल व्याख्याएँ की जा रही हैं। एक, पाठक के लिए दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। मध्यम मार्ग का अनुसरण कर आगमवाणी का भावोद्घाटन करने वाला ऐसा प्रयत्न होना चाहिए जो सुबोध भी हो, सरल भी हो, संक्षिप्त हो, पर सारपूर्ण व सुगम हो।

गुरुदेव ऐसा ही चाहते थे। उसी भावना को लक्ष्य में रखकर मैंने ४-५ वर्ष पूर्व इस विषय में चिन्तन प्रारम्भ किया।

सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि.सं. २०३६ वैशाख शुक्ला १०, महावीर कैवल्य-दिवस को दृढ़ निर्णय करके आगम-बत्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ कर दिया और अब पाठकों के हाथ में आगम-ग्रन्थ क्रमशः पहुँच रहे हैं, इसकी मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है।

आगम-सम्पादन का यह ऐतिहासिक कार्य पूज्य गुरुदेव की पुण्य-स्मृति में आयोजित किया गया है। आज उनका पुण्यस्मरण मेरे मन को उल्लसित कर रहा है। साथ ही मेरे वन्दनीय गुरु-भ्राता पूज्य स्वामी श्री हजारीमलजी महाराज की प्रेरणाएँ, उनकी आगम-भक्ति तथा आगम सम्बन्धी तलस्पर्शी ज्ञान, प्राचीन धारणाएँ, मेरा सम्बल बनी हैं। अतः मैं उन दोनों स्वर्गीय आत्माओं की पुण्यस्मृति में विभोर हूँ।

शासनसेवी स्वामीजी श्री ब्रजलालजी महाराज का मार्गदर्शन, उत्साह-संवर्धन, सेवाभावी शिष्य मुनि विनयकुमार व महेन्द्रमुनि का साहचर्य-बल, सेवा-सहयोग तथा महासती श्री कानकुंवरजी, महासती श्री झणकारकुंवरजी, परमविदुषी साध्वी श्री उमरावकुंवरजी 'अर्चना' की विनम्र प्रेरणा मुझे सदा प्रोत्साहित तथा कार्यनिष्ठ बनाये रखने में सहायक रही है।

मुझे दृढ़ विश्वास है कि आगम-वाणी के सम्पादन का यह सुदीर्घ प्रयत-साध्य कार्य सम्पन्न करने में मुझे सभी सहयोगियों, श्रावकों व विद्वानों का पूर्ण सहकार मिलता रहेगा और मैं अपने लक्ष्य तक पहुँचने में गतिशील बना रहूँगा।

इसी आशा के साथ ·······

— मुनि मिश्रीमल 'मधुकर'

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

कार्यकारिणी समिति

अध्यक्ष	:	श्री सागरमल जी बैताला	इन्दौर
कार्याध्यक्ष	:	श्री रतनचन्दजी मोदी	ब्यावर
उपाध्यक्ष	:	श्री धनराजजी विनायकिया	ब्यावर
		श्री भंवरलालजी गोठी	मद्रास
		श्री हुक्मीचन्दजी पारख	जोधपुर
		श्री दुलीचन्दजी चोरडिया	मद्रास
		श्री जसराजजी पारख	दुर्ग
महामन्त्री	:	श्री जी. सायरमलजी चोरडिया	मद्रास
मन्त्री	:	श्री ज्ञानचन्दजी विनायकिया	ब्यावर
		श्री ज्ञानराजजी मूथा	पाली
सहमन्त्री	:	श्री प्रकाशचन्दजी चौपड़ा	ब्यावर
कोषाध्यक्ष	:	श्री जंवरीलालजी शिशोदिया	ब्यावर
		श्री आर. प्रसन्नचन्दजी चोरडिया	मद्रास
परामर्शदाता	:	श्री माणकचन्दजी संचेती	जोधपुर
		श्री तेजराजजी भण्डारी	जोधपुर
सदस्य	:	श्री एस. सायरमलजी चोरडिया	मद्रास
		श्री मूलचन्दजी सुराणा	नागौर
		श्री मोतीचन्दजी चोरडिया	मद्रास
		श्री अमरचन्दजी मोदी	ब्यावर
		श्री किशनलालजी बैताला	मद्रास
		श्री जतनराजजी मेहता	मेड़ता सिटी
		श्री देवराजजी चोरडिया	मद्रास
		श्री गौतमचन्दजी चोरडिया	मद्रास
		श्री सुमेरमलजी मेड़तिया	जोधपुर
		श्री आसूलालजी बोहरा	जोधपुर
		श्री बुधराजजी बाफणा	ब्यावर

सम्पादकीय

(प्रथम संस्करण से)

नाम :

अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र द्वादशांगी का नववां अंग है। शब्दार्थ के अनुसार 'अनुत्तर, उपपात और दशा' शब्दों से अनुत्तरौपपातिकदशा शब्द बना है। अनुत्तर अर्थात्— अनुत्तर विमान, उपपात अर्थात् उत्पन्न होना और दशा अर्थात्— अवस्था या दश संख्या का सूचन। इस सूत्र के दश अध्ययन होने से दशा ऐसा शब्द प्रयुक्त होना चाहिए। इसमें ऐसे साधकों का वर्णन है जिन्होंने यहाँ से आयुष्य पूर्ण कर अनुत्तर विमानों में जन्म लिया और फिर मनुष्य जन्म पाकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। समवायांगसूत्र में इसके दश अध्ययनों का सूचन किया गया है किन्तु दश अध्ययनों के नामों का निर्देश नहीं मिलता है। स्थानांगसूत्र के अनुसार उनके नाम इस प्रकार हैं — ऋषिदास, धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिक, स्वस्थान, शालिभद्र, आनन्द, तेतली, दशार्णभद्र और अतिमुक्त।[१] तत्त्वार्थराजवार्तिक के अनुसार उनके नाम इस प्रकार हैं — ऋषिदास, वान्य, सुनक्षत्र, कार्तिक, नन्द, नन्दन, शालिभद्र, अभय, वारिषेण, चिलातपुत्र।[२] अंगपण्णत्ती मे उनके नाम इस प्रकार हैं — ऋषिदास, शालिभद्र, सुनक्षत्र, अभय, धन्य, वारिषेण, नन्दन, नन्द, चिलातपुत्र, कार्तिक।[३] धवला में कार्तिक के स्थान पर कार्तिकेय और नन्द के स्थान पर आनन्द नाम प्राप्त होते हैं।[४]

वर्तमान में प्रस्तुत आगम ३ वर्गो में विभक्त है, जिनमें क्रमशः १०, १३ और १० अध्ययन हैं। इस प्रकार ३३ अध्ययनों में ३३ महान् आत्माओं का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इनमें २३ राजकुमार तो श्रेणिक के पुत्र हैं।

अनुत्तरौपपातिकदशा का जो स्वरूप वर्तमान में उपलब्ध है वह स्थानांग और समवायांग की वाचना से पृथक् है। आचार्य अभयदेव ने स्थानांगवृत्ति में इसे वाचनान्तर कहा है।

विषय-वस्तु :

समवायांग सूत्र में अनुत्तरौपपातिक सूत्र में वर्णित विषय का निर्देश तथा उसका श्लोक-परिमाण पदसंख्या आदि का कथन इस प्रकार है —

सौधर्म ईशान आदि नाम वाले बारह स्वर्ग माने गए हैं। बारहवें स्वर्ग के ऊपर नव ग्रैवेयक विमान आते हैं और उनके ऊपर विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित एवं सर्वार्थसिद्ध — ये पाँच अनुत्तर विमान आते हैं। इन विमानों से उत्तर — उत्तम-प्रधान अन्य विमान न होने के कारण इनको अनुत्तर विमान कहते हैं। जो साधक अपने उत्कृष्ट तप और संयम की साधना से इनमें उपपात (जन्म) पाते हैं, उनको 'अनुत्तरौपपातिक' कहते हैं।

अनुत्तरौपपातिक में अनुत्तरौपपातिकों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, समवसरण, तत्कालीन राजा, माता-पिता धर्मगुरु, धर्माचार्य, धर्मकथा, संसार की ऋद्धि, भोग-उपभोग का त्याग कर, श्रुत, प्रव्रज्या, तपस्या, संलेखना, अन्तिम समय के पादोपगमन (संथारा) आदि, अनुत्तरविमान में उत्पाद (जन्म), वहाँ से उत्तमकुल में जन्म, बोधि-लाभ तथा अन्त-क्रिया आदि का वर्णन किया गया है।

---

१. स्थानांग १०/११४.

२. तत्त्वार्थराजवार्तिक १/२०, पृ. ७३.

३. अंगपण्णत्ती ५५.

४. षट्खंडागम १/१/२.

समवायांग तथा नन्दीसूत्र में जहाँ अनुत्तरौपपातिक का परिचय दिया गया है, वहाँ कहा गया है — 'इस सूत्र की वाचनाएँ परिमित हैं ऐसा बताया गया है।' अर्थात् अनुत्तरौपपातिक के अनुयोगद्वार संख्येय हैं, उसमें वेढ संख्येय हैं, श्लोक नाम के छन्द संख्येय हैं, उसकी निर्युक्ति संख्येय हैं, उसकी संग्रहणी संख्येय हैं तथा प्रतिपत्तियाँ संख्येय हैं। इस सूत्र में एक श्रुतस्कन्ध है, तीन वर्ग हैं, अध्ययन दश हैं, अक्षर असंख्येय हैं, गम अनन्त हैं और पर्याय भी अनन्त हैं।

इस सूत्र में परिमित त्रस जीवों का और अनन्त स्थावर जीवों का वर्णन है तथा उक्त सब पदार्थ स्वरूप से कहे गये हैं और हेतु उदाहरण द्वारा व्यवस्थित भी किये गए हैं। नाम, स्थापना आदि द्वारा भी वे सब पदार्थ उक्त सूत्र में प्रस्तुत किये गए हैं। इस प्रकार इस सूत्र को समझने वाला आत्मा उक्त विषयों का ज्ञाता-विज्ञाता और दृष्टा होता है। इस प्रकार इस सूत्र में चरण-करण की प्ररूपणा की गई है।

नन्दीसूत्र में भी समवायांग सूत्र के अनुरूप विषयों की प्ररूपणा प्राप्त होती है। हाँ, नन्दीसूत्र में अध्ययनों की संख्या का निर्देश नहीं है। नन्दीसूत्र के अनुसार अनुत्तरौपपातिक का उद्देशन तीन दिन में होता है जबकि समवायांग के पाठानुसार दस दिन का समय उद्देशन के लिए होता है। नन्दीसूत्र में इस विषय में इस प्रकार उल्लेख है — "एगे सुयक्खंधे, तिण्णि वग्गा, तिण्णि उद्देसणकाला"।[१] अर्थात् — इस नवम अंग में तीन वर्ग हैं और तीन उद्देशन काल हैं। स्पष्ट है कि यहाँ अध्ययन का नाम ही नहीं है। किन्तु समवाय में इसके दस अध्ययन बताए हैं। समवाय के वृत्तिकार लिखते हैं कि इस भेद का हेतु अवगत नहीं है — "इह तु दृश्यन्ते दश-इति अत्र अभिप्रायो न ज्ञायते इति"।[२] उपर्युक्त विभिन्नता से स्पष्ट है कि हमारे आगमशासन का क्रम या प्रवाह विशेष रूप से खण्डित हो गया है।

स्थानांगसूत्र में केवल दश अध्ययनों का वर्णन है। तत्त्वार्थराजवार्तिक के अभिमतानुसार प्रस्तुत आगम में प्रत्येक तीर्थंकर के समय में होने वाले १०-१० अनुत्तरौपपातिक श्रमणों का वर्णन है। कषायपाहुड में भी इसी का समर्थन हुआ है।

वर्तमान में उपलब्ध यह सूत्र और प्राचीनकाल में उपलब्ध वह सूत्र — इन दोनों में क्या विशेषता है ? इसका उत्तर इस प्रकार है —

तीन वर्ग का होना राजवार्तिक आदि चारों ग्रन्थों में ही नहीं बताया गया है। स्थानांग और राजवार्तिक में जिन विशेष नामों का निर्देशन है, उनमें से कुछ नाम वर्तमान सूत्र में उपलब्ध हैं। जैसे — वारिषेण (राजवार्तिक) नाम प्रथम वर्ग में है। इसी भाँति धन्य, सुनक्षत्र तथा ऋषिदास (स्थानांग तथा राजवार्तिक) ये तीन नाम तृतीय वर्ग में वर्णित हैं।

ये चार नाम ही वर्तमान सूत्र में उपलब्ध होते हैं, अन्य किसी भी नाम का निर्देश नहीं है। जिन अन्य नामों का निर्देश वर्तमान पाठ में उपलब्ध है, वे नाम न तो स्थानांग में हैं और न राजवार्तिक में हैं। स्थानांग सूत्र के वृत्तिकार श्री अभयदेवसूरि इस सम्बन्ध में सूचित करते हैं कि स्थानांग में कथित नाम प्रस्तुत सूत्र की किसी अन्य वाचना में होना सम्भावित हैं। वर्तमान वाचना उस वाचना से भिन्न है।

प्रस्तुत सूत्र के पदों का प्रमाण समवायांग सूत्र में संख्येय लाख पद बताया है और उसकी वृत्ति में छियालीस लाख और आठ हजार (४६,०८,०००) पद बताए हैं। नन्दीसूत्र के मूल में संख्येय हजार पद बताए हैं। वृत्ति में भी संख्येय हजार पद प्राप्त होते हैं। धवला तथा जय-धवला में ९२,४४,००० (बानवै लाख चवालीस हजार) पदपरिमाण बतलाया गया है। राजवार्तिक में पद संख्या का कहीं उल्लेख नहीं है।

प्रस्तुत अनुत्तरौपपातिक सूत्र की स्थिति प्राचीन अनुत्तरौपपातिक सूत्र से कुछ भिन्न है। प्रथम वर्ग में १० अध्ययन हैं,

---

१. नन्दीसूत्र पृ. २३३, सू. ५४

२. समवाय वृत्ति पृ. ११४

द्वितीय वर्ग में १३ अध्ययन हैं, और तृतीय वर्ग में १० अध्ययन हैं। इस प्रकार तीनों वर्गों की अध्ययन संख्या ३३ होती है। प्रत्येक अध्ययन में एक-एक महापुरुष का जीवन वर्णित है।

प्रथम वर्ग :

प्रथम वर्ग में जालि, मयालि, उपजालि, पुरुषसेन, वारिसेण, दीर्घदन्त, लष्टदन्त, वेहल्ल, वेहायस और अभयकुमार इन दश राजकुमारो का, उनके माता-पिता, नगर, जन्म आदि का तथा वहाँ के राजा, उद्यान आदि का परिचय दिया गया है तथा उक्त दशों राजकुमार भगवान् महावीर के पास संयम स्वीकार करके तथा उत्कृष्ट तप-त्याग की आराधना कर अनुत्तर विमान में देव हुए और वहां से चयकर मानव शरीर धारण कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होंगे।

द्वितीय वर्ग :

द्वितीय वर्ग में दीर्घसेन, महासेन, लष्टदन्त, गूढदन्त, शुद्धदन्त, हल्ल, द्रुम, द्रुमसेन महाद्रुमसेन, सिंह, सिंहसेन, महासिंहसेन और पुण्यसेन — इन तेरह राजकुमारों के जीवन का वर्णन भी जालिकुमार के जीवन की भाँति ही संक्षेप में किया गया है। इस वर्ग में वर्णित महापुरुषों का जीवन भोगमय तथा तपोमय था और सभी राजकुमार अपनी तप-साधना के द्वारा पाँच अनुत्तर विमानों में गए हैं तथा वहाँ से चयकर मनुष्य जन्म पाकर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होंगे।

तृतीय वर्ग :

तृतीय वर्ग में धन्यकुमार, सुनक्षत्रकुमार, ऋषिदास, पेल्लक, रामपुत्र, चन्द्रिक, पृष्टिमातृक, पेढालपुत्र, पोट्टिल्ल तथा वेहल्ल इन दश कुमारों के भोगमय जीवन के पश्चाद्वर्ती तपोमय जीवन का सुन्दर चित्रण किया गया है। उक्त दश कुमारों में धन्यकुमार का वर्णन विस्तारपूर्वक है।

अनुत्तरौपपातिकसूत्र का प्रमुख पात्र धन्यकुमार काकन्दी की भद्रा सार्थवाही का पुत्र था। अपरिमित धन-धान्य और सुख-उपभोग के साधनों से सम्पन्न था। धन्यकुमार का लालन-पालन बड़े ऊँचे स्तर पर हुआ था। वह सांसारिक सुखों में लीन था। एक दिन श्रमण भगवान् महावीर के त्याग-वैराग्य संयुक्त दिव्य पावन प्रवचन सुनकर वैराग्य की भावना जागृत हो गई और तदनुसार वह अपने विपुल वैभव को छोड़कर मुनि बन गया।

मुनिजीवन प्राप्त करने के पश्चात् जो त्याग और तपोमय जीवन का प्रारम्भ हुआ वह श्रमणसमुदाय में अद्भुत था। तपोमय जीवन का ऐसा अद्भुत और सर्वांगीण वर्णन श्रमण-साहित्य में अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता तो इतर साहित्य में उपलब्ध हो ही कैसे सकता है ? अनगार बनते ही धन्य ने जीवन भर के लिए छठ-छठ के तप से पारणा करने की प्रतिज्ञा की। पारणा में आचाम्लव्रत अर्थात् केवल रूक्ष भोजन करते थे। इसमें भी अनेकानेक प्रतिबन्ध उन्होंने स्वेच्छया स्वीकार किए थे। इस प्रकार उत्कृष्ट तप करने से उनका शरीर केवल अस्थिपंजर रह गया था।

इस प्रकार अनुत्तरौपपातिकसूत्र में भगवान् महावीरकालीन उग्र तपस्वियों में महादुष्करकारक और महानिर्जराकारक धन्य अनगार ही थे। स्वयं भगवान् महावीर ने सम्राट् श्रेणिक को बताया था कि चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार उत्कृष्ट तपोमूर्ति हैं। इस प्रकार धन्य अनगार नव मास की स्वल्पावधि में उत्कृष्ट साधना कर सर्वार्थसिद्ध विमान में देव रूप से उत्पन्न हुए। वहाँ से च्यवनकर वे मनुष्यजन्म पाकर तपःसाधना के द्वारा सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होंगे।

काकन्दी की भद्रा सार्थवाही का द्वितीय पुत्र सुनक्षत्रकुमार था। उसका वर्णन भी धन्यकुमार की तरह ही समझना चाहिए। शेष आठ कुमारों का वर्णन प्रायः भोग-विलास में तथा तप-त्याग में सुनक्षत्र के समान ही समझना चाहिए।

इस प्रकार प्रस्तुत अनुत्तरौपपातिकसूत्र में तेतीस महापुरुषों का परिचय दिया गया है। यह वर्णन सम्पूर्ण प्रकार से प्राचीन समय की परिस्थिति का द्योतक है। अतएव ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

यद्यपि श्रमणसंघ के युवाचार्य विद्वद्वरेण्य पं. र. मुनिश्री मिश्रीलालजी म.सा. 'मधुकर' ने, जिनके नेतृत्व में आगमबत्तीसी का प्रकाशन हो रहा है, इसे अक्षरश: अवलोकन कर लिया है और भारिल्लजी ने संशोधन कर दिया है, अतएव मैं निश्चिन्त हूँ।

प्रस्तुत सूत्र में मूल आगम-वाणी का एवं उसके व्याख्या-साहित्य का संक्षेप में परिचय दिया गया है, जिससे प्रबुद्ध पाठकों को आगम की महत्ता का परिज्ञान हो सके।

कई वर्षों से आगमसेवा के प्रति मेरे मन के कण-कण में, अणु-अणु में गहरी निष्ठा रही है। कर्मवर्गणा से पृथक् होने के लिए आगम का स्वाध्याय एक रामबाण औषध है। सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा की पावन वाणी में जो तात्त्विक रहस्य प्राप्त होता है, वह अल्पज्ञों की वाणी में कदापि नहीं मिल सकता। वास्तविक तथ्यों को जानने के लिए तत्त्वज्ञ गुरु का अनुग्रह परम आवश्यक है। ज्ञानी गुरु के बिना आगमों के गहन रहस्यों को समझना अल्पज्ञों के लिए अशक्य है।

गुरु का संयोग प्राप्त होने पर भी जब तक छद्मस्थदशा है, तब तक त्रुटियों की सम्भावना बनी ही रहती है। अतएव गहन रहस्यों से अनभिज्ञ होने से प्रस्तुत अनुवाद में कहीं अर्थ की त्रुटियाँ रही हों तो पाठक क्षमा करें।

इस प्रकार पूरी तरह समर्थ न होने पर भी परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य, अनुयोग-प्रवर्तक श्री कन्हैयालालजी म. 'कमल' एवं परमोपकारी पूजनीया मातेश्वरी महासती श्री माणेककुंवरजी म. की पावनी कृपा से तथा पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल की अनन्य प्रेरणा से तथा परमादरणीय पू. आत्मारामजी म.सा. एवं श्री विजयमुनिजी म. की श्रुत-सहायता से एवं मेरे सहयोगी अन्य साध्वी-समवाय के परम सहयोग से यह कार्य सम्पन्न करने में समर्थ हुई हूँ। इन सभी का सहयोग निरन्तर मिलता रहे और भविष्य में भी आगम-सेवा का अलभ्य लाभ मुझे मिलता रहे, यही हार्दिक कामना।

मुझे आशा ही नहीं सम्पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत आगम जन-जन के अन्तर्मानस में वीतराग परमात्मा के प्रति गहरी निष्ठा उत्पन्न करेगा। अज्ञान अन्धकार को नष्ट करके ज्ञानप्रकाश फैलाएगा। इसी आशा और उल्लास के साथ प्रस्तुत आगम प्रबुद्ध पाठकों को समर्पित कर अत्यन्त आनन्द का अनुभव करती हूँ।

साध्यसाधिका

साध्वी मुक्तिप्रभा

प्रस्तावना

अनुत्तरौपपातिकदशा : एक अनुचिन्तन

(प्रथम संस्करण से)

जैन आगम साहित्य भारतीय साहित्य की विराट् निधि का एक अनमोल भाग है। वह अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य के रूप में उपलब्ध है। अंगप्रविष्ट साहित्य के सूत्र रूप में रचयिता गणधर हैं और अर्थ के प्ररूपक साक्षात् तीर्थंकर होने के कारण वह मौलिक व प्रामाणिक माना जाता है। द्वादशांगी-अंगप्रविष्ट है। तीर्थंकरों के द्वारा प्ररूपित अर्थ के आधार पर स्थविर जिस साहित्य की रचना करते है वह अनंगप्रविष्ट है। द्वादशांगी के अतिरिक्त जितना भी आगम साहित्य है वह अनंगप्रविष्ट है, उसे अंगबाह्य भी कहते हैं। जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने यह भी उल्लेख किया है कि गणधरों की प्रबल जिज्ञासाओं के समाधान हेतु तीर्थंकर त्रिपदी—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का उपदेश प्रदान करते हैं। उस त्रिपदी के आधार पर जो साहित्य-निर्माण किया जाता है वह अंगप्रविष्ट है और भगवान् के मुक्त व्याकरण के आधार पर जिस साहित्य का सृजन हुआ है वह अनंगप्रविष्ट है।[१]

स्थानाङ्ग, नंदी [२] आदि श्वेताम्बर साहित्य में यही विभाग प्राचीनतम है। दिगम्बर साहित्य में भी आगमों के यही दो विभाग उपलब्ध होते हैं — अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य।[३] अंगबाह्य के नामों में कुछ अन्तर है।

अंगप्रविष्ट का स्वरूप सदा सर्वदा सभी तीर्थंकरों के समय नियत होता है। वह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है।[४] उसे द्वादशांगी या गणिपिटक भी कहते हैं। अंग-साहित्य बारह विभागों में विभक्त है [५] — (१) आचार (२) सूत्रकृत (३) स्थान (४) समवाय (५) भगवती (६) ज्ञाताधर्मकथा (७) उपासकदशा (८) अन्तकृद्दशा (९) अनुत्तरौपपातिकदशा (१०) प्रश्नव्याकरण (११) विपाक (१२) दृष्टिवाद।

दृष्टिवाद वर्तमान में अनुपलब्ध है।

अनुत्तरौपपातिकदशा नौवां अंग है। प्रस्तुत आगम में ऐसे महान् तपोनिधि साधकों का उल्लेख है जिन्होंने उत्कृष्टतम तप की साधना-आराधना कर आयु पूर्ण होने पर अनुत्तर विमानों में जन्म ग्रहण किया। विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध ये पाँच अनुत्तर विमान हैं। अन्य सभी विमानों में श्रेष्ठ होने से इन्हें 'अनुत्तर' विमान कहा है। अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले अनुत्तरौपपातिक कहे जाते हैं। प्रथम वर्ग में दस अध्ययन हैं, इसलिए इसे अनुत्तरौपपातिकदशा कहा है।[६]

---

१. गणहर थेरकयं वा, आएसा मुक्त-वागरणओ वा।
धुव-चल विसेसओ वा अंगाणंगेसु नाणत्तं ॥
— विशेषावश्यक भाष्य, गा. ५५२

२ नंदीसूत्र, ४३.

३ (क) षट्खण्डागम भाग ९, पृ ९६ (ख) सर्वार्थसिद्धि पूज्यपाद १-२० (ग) राजवार्तिक-अकलंक १-२०
(घ) गोम्मटसार जीवकाण्ड, नेमिचन्द्र, पृ १३४.

४. (क) समवायाग, समवाय १४८, मुनि कन्हैयालालजी म. सम्पादित, पृ. १३८.
(ख) नन्दीसूत्र, ५७.

५ समवायांग प्रकीर्णक समवाय सूत्र ८८.

६ तत्रानुत्तरेषु विमानविशेषेषूपपातो-जन्म अनुत्तरोपपातः स विद्यते येषां तेऽनुत्तरौपपातिकास्तत्प्रतिपादिका दशाः [illegible]
वद्धप्रथमवर्गयोगाद्दशाः ग्रन्थ-विशेषोऽनुत्तरौपपातिकदशानाम् च सम्बन्धसूत्रम् ।
— अनुत्तरौपपातिकदशा [illegible]

दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि ऐसे मानवों की दशा यानी अवस्था का वर्णन होने से भी इसे अनुत्तरौपपातिकदशा कहा है। अनुत्तर विमानवासी देवों की एक विशेषता यह है कि वे परीतसंसारी होते हैं। वहां से च्युत होकर एक या दो बार मानव-रूप में जन्म लेकर निर्वाण प्राप्त करते हैं।

प्राचीन आगम [७] व आगमेतर [८] ग्रन्थों में प्रस्तुत आगम के सम्बन्ध में जो उल्लेख सम्प्राप्त होते हैं, उनके अनुसार वर्तमान में उपलब्ध अनुत्तरौपपातिकदशा में न वर्णन है और न वे चरित्र ही हैं। यह परिवर्तन कब हुआ, यह अन्वेषनीय है। नवांगी टीकाकार आचार्य अभयदेव ने इसे वाचनान्तर कहा है। [९] मैंने अपने "जैन आगम साहित्य मनन और मीमांसा" ग्रन्थ में इस सम्बन्ध में विस्तार से विवेचन किया है, अत: विशेष जिज्ञासु उसे देखें। वर्तमान में प्रस्तुत आगम तीन वर्गो में विभक्त है, जिनमें क्रमश: दस, तेरह और दस अध्ययन हैं। इस प्रकार तेतीस अध्ययनों में तेतीस महान् आत्माओं का बहुत ही संक्षेप में वर्णन है। जो घटनाएं और आख्यान इसमें आये हैं, वे पल्लवित नहीं हैं, केवल संकेतमात्र हैं। प्रथम वर्ग में जालिकुमार का और तृतीय वर्ग में धन्यकुमार का चरित्र ही कुछ विस्तार से आया है। शेष चरित्रों में तो केवल सूचन ही है। पर इस आगम में जो भी पात्र आये हैं उनका ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है, जो इतिहास के अनछुए पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं।

प्रस्तुत आगम में सम्राट् श्रेणिक के जालि, मयालि, उपजालि, पुरुषसेन, वारिसेन, दीर्घदन्त, लष्टदन्त, विहल्ल, वेहायस, अभयकुमार, दीर्घसेन, महासेन, लष्टदन्त, गूढ़दन्त, शुद्धदन्त, हल्ल, द्रुम, द्रुमसेन, महाद्रुमसेन, सिंह, सिंहसेन, महासिंहसेन, पुण्यसेन, इन तेवीस राजकुमारों के साधनामय जीवन का वर्णन है।

सम्राट् श्रेणिक मगध साम्राज्य का अधिपति था। जैन, बौद्ध और वैदिक, इन तीनों परम्पराओं में श्रेणिक के सम्बन्ध में पर्याप्त चर्चाएं प्राप्त होती हैं। भागवत महापुराण [१०] के अनुसार वह शिशुनागवंशीय कुल में उत्पन्न हुआ था। महाकवि अश्वघोष ने उसका कुल हर्यङ्ग लिखा है। [११] आचार्य हरिभद्र ने उनका कुल याहिक माना है। [१२] रायचौधरी का मन्तव्य है [१३] कि बौद्ध-साहित्य में जो हर्यङ्ग कुल का उल्लेख है, वह नागवंश का ही द्योतक है। कोविल्ल ने हर्यङ्ग का अर्थ सिंह किया है। पर उसका अर्थ नाग भी है। प्रोफेसर भाण्डारकर ने नाग दशक में बिम्बिसार की भी गणना की है और उन सभी राजाओं का वंश भी नागवंश माना है। बौद्ध-साहित्य में इस कुल का नाम शिशुनागवंश लिखा है। [१४] जैन ग्रन्थों में वर्णित वाहिक कुल भी नागवंश ही है। वाहिकजनपद नाग जाति का मुख्य केन्द्र रहा है। उसका कार्य-क्षेत्र प्रमुख रूप से तक्षशिला था, जो वाहिक जनपद में था। इसलिये श्रेणिक को शिशुनागवंशीय मानना असंगत नहीं है।

---

७. (क) नन्दीसूत्र ८९
(ख) स्थानाङ्ग १०/११४
(ग) समवायांग प्रकीर्णक समवाय ९७

८. (क) तत्त्वार्थराजवार्तिक १/२०, पृ. ७३
(ख) कषायपाहुड भाग १, पृ. १३०
(ग) अंगपण्णत्ती ५५
(घ) षट्खण्डागम १/१/२

९. तदेवमिहापि वाचनान्तरापेक्षयाऽध्ययनविभाग: उक्तो, न पुनरुपलभ्यमानवाचनापेक्षयेति। —स्थानाङ्गवृत्ति पत्र ४८३

१०. भागवतपुराण, द्वि. ख. पृ. ९०३

११. जातस्य हर्यगकुले विशाले — बुद्धचरित्र, सर्ग ११, श्लोक २

१२. आवश्यक हरिभद्रीया वृत्ति पत्र ६७७

१३. स्टडीज इन इण्डिया एन्टिक्वीटीज, पृ. २१६

१४. महावंश गाथा २७-३२

पण्डित गेगर और भाण्डारकर ने सिलोन के पाली वंशानुक्रम के अनुसार बिम्बसार और शिशुनाग वंश को पृथक् बताया है। बिम्बसार शिशुनाग के पूर्व थे।[१५] डाक्टर काशीप्रसाद का मन्तव्य है कि श्रेणिक के पूर्वजों का काशी के राजवंश के साथ पैत्रिक सम्बन्ध था, जहाँ पर तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने जन्म ग्रहण किया था। इसलिए श्रेणिक का कुलधर्म निर्ग्रन्थ (जैन) धर्म था। आचार्य हेमचन्द्र ने भी राजा श्रेणिक के पिता प्रसेनजित को भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का श्रावक लिखा है।[१६]

श्रेणिक का जन्म-स्थान क्या था ? इस सम्बन्ध में जैन, बौद्ध और वैदिक परम्परा के ग्रन्थ मौन हैं। जैन आगमों में श्रेणिक के भंभसार, भिंभसार, भिंभीसार ये नाम मिलते हैं।[१७] श्रेणिक बालक था, उस समय राजमहल में आग लगी। सभी राजकुमार विविध बहुमूल्य वस्तुएं लेकर भागे। किन्तु श्रेणिक ने भंभा को ही राजचिह्न के रूप में सारभूत समझकर ग्रहण किया। एतदर्थ उसका नाम भंभसार पड़ा।[१८] अभिधान-चिन्तामणि,[१९] उपदेशमाला,[२०] ऋषिमण्डल प्रकरण,[२१] भरतेश्वर-बाहुबली वृत्ति,[२२] आवश्यकचूर्णि,[२३] प्रभृति प्राकृत और संस्कृत के ग्रन्थों में भंभासार शब्द मुख्य रूप से प्रयुक्त हुआ है। भंभा, भिंभा और भिंभी ये सभी शब्द भेरी के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।[२४]

बौद्धपरम्परा में श्रेणिक का नाम बिम्बिसार प्रचलित है।[२५] बिम्बि का अर्थ "सुवर्ण" है। स्वर्ण के सदृश वर्ण होने के कारण उनका नाम "बिम्बिसार" पड़ा हो।[२६] तिब्बती परम्परा मानती है कि श्रेणिक की माता का नाम बिम्बि था अतः वह बिम्बसार कहा जाता है।[२७]

जैन परम्परा का मन्तव्य है कि सैनिक श्रेणियों की स्थापना करने से उसका नाम श्रेणिक पड़ा।[२८] बौद्ध परम्परा का

---

१५. स्टडीज इन इण्डियन एन्टिक्वीटीज, पृ. २१५-२१६
१६. त्रिषष्ठि — १०/६/८
१७. क — सेणिए भंभसारे — ज्ञाताधर्मकथा, श्रुत. १ अ. १३
 ख — दशाश्रुतस्कन्ध दशा १०, सूत्र-१
 ग — सेणिए भंभसारे, सेणिए भिंभसारे — उववाई सूत्र, सू ७ — पृ. २३, सू ६ — पृ. १९
 घ — सेणिए भिंभसारे — ठाणांग सूत्र, स्थां. ९, पत्र ४५८
१८. क — सेणियकुमारेण पुणो जयढक्का कड्ढिया पविसिऊणं पिउणा तुट्ठेण तओ भणिओ सो भंभासारो।
 — उपदेशमाला सटीक, पत्र ३३४-१
 ख — स्थानांग वृत्ति, पत्र ४६१-१
 ग — त्रिषष्ठिशलाका-१०/६/१०९-११२
१९. अभिधानचिन्तामणि काण्ड ३, श्लोक ३७६
२०. उपदेशमाला, सटीकपत्र ३२४
२१. ऋषिमण्डलप्रकरण, पत्र १४३
२२. भरतेश्वरबाहुबली वृत्ति-पत्र विभाग १२२
२३. आवश्यकचूर्णि उत्तरार्ध पत्र १५८
२४. पाइय-सद्द-महण्णवो, पृष्ठ ७९४-८०७
२५ इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली, भाग १४, अंक २, जून १९३८, पृ. ४१५
२६. (क) उदान अट्ठकथा १०४
 (ख) पाली इंग्लिश डिक्शनरी पृ. ११०
२७. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली, भाग १४, अंक २, जून १९३८, पृ. ४१३
२८. श्रेणीः कायति श्रेणिको मगधेश्वरः। — अभिधान चिन्तामणि स्वोपज्ञवृत्ति, मर्त्यकाण्ड श्लोक ३७६

अभिमत है कि पिता के द्वारा अठारह श्रेणियों के स्वामी बनाये जाने के कारण वह श्रेणिक बिम्बसार कहलाया।[२९]

जैन, बौद्ध और वैदिक वाङ्मय में श्रेणी और प्रश्रेणी की यत्र-तत्र चर्चाएं आई हैं। जम्बूद्वीपपण्णत्ति[३०] जातक मूगपक्खजातक[३१] में श्रेणी की संख्या अठारह मानी है। महावस्तु में[३२] तीस श्रेणियों का उल्लेख है। यजुर्वेद में[३३] त्रेपन का उल्लेख है। किसी-किसी का अभिमत है कि महती सेना होने से या सेनिय गोत्र होने से उसका नाम श्रेणिक पड़ा।[३४] श्रीमद्भागवत पुराण में श्रेणिक के अजातशत्रु[३५] विधिसार[३६] नाम भी आये हैं। दूसरे स्थलों में विन्ध्यसेन और सुविन्दु नाम के भी उल्लेख हुए हैं।[३७]

आवश्यक हरिभद्रीयावृत्ति[३८] और त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र[३९] के अनुसार श्रेणिक के पिता प्रसेनजित थे। दिगम्बर आचार्य हरिषेण ने श्रेणिक के पिता का नाम उपश्रेणिक लिखा है।[४०] आचार्य गुणभद्र ने उत्तरपुराण[४१] में श्रेणिक के पिता का नाम कुणिक लिखा है जो अन्यान्य आगम और आगमेतर ग्रन्थों से संगत नहीं है। वह श्रेणिक का पिता नहीं किन्तु पुत्र है।[४२] अन्यत्र ग्रन्थों में श्रेणिक के पिता का नाम महापद्म, हेमजित्, क्षेत्रोजा, क्षेत्प्रोजा भी मिलते हैं।[४३]

जैन साहित्य में श्रेणिक की छब्बीस रानियों के नाम उपलब्ध होते हैं। उनके ३५ पुत्रों का भी वर्णन मिलता है।[४४] ज्ञातासूत्र[४५] अन्तकृद्दशा[४६] निरयावलिका,[४७] आवश्यकचूर्णि, निशीथचूर्णि, त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र, उपदेशमाला दोघट्टी टीका, श्रेणिकचरित्र प्रभृति में उनके अधिकांश पुत्र, पौत्र और महारानियों के भगवान् महावीर के पास प्रव्रज्या लेने के उल्लेख हैं। वे सभी ज्ञान, ध्यान व उत्कृष्ट तप-जप की साधना कर स्वर्गवासी होते हैं। विस्तारभय से हम उन सभी का उल्लेख नहीं

---

२९. स पित्राष्टादशसु श्रेणिष्वगतारितः
अतोऽस्य श्रेण्यो बिम्बिसार इति ख्यातः (?) —— *विनयपिटक, गिलगित मांस्कृप्ट*

३०. जम्बूद्वीपपण्णत्ति, वक्षस्कार ३, पत्र १९३

३१. जातक, मूगपक्खजातक, भाग ६

३२. (क) महावस्तु भाग ३,
(ख) ऋषभदेव : एक परिशीलन, ले. देवेन्द्र मुनि (परिशिष्ट ३, पृ. १५) द्वि.सं. श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर (राज.)

३३. (क) यजुर्वेद का ३० वाँ अध्याय
(ख) वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा, पृ. २७-३०

३४. धम्मपाल-उदान टीका, पृ. १४०

३५. श्रीमद्भागवत, द्वितीय काण्ड, पृ. ९०३

३६. श्रीमद्भागवत १२/१

३७. भारतवर्ष का इतिहास, पृ. २५२, भगवद्दत्त

३८. आवश्यक हरिभद्रीयावृत्ति, पत्र ६७१

३९. त्रिषष्ठि, १०/६/१

४०. वृहत्कथाकोष, कथा ५५, श्लो. १-२

४१. उत्तरपुराण ७४/४/८, पृ. ४७१

४२. औपपातिकसूत्र

४३. पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शिएन्ट इण्डिया, पृ. २०५

४४. देखिये भगवान् महावीर —— एक अनुशीलन, पृ. ४७३-४७४. देवेन्द्रमुनि शास्त्री

४५. ज्ञातासूत्र १/१

४६. अन्तकृद्दशा, वर्ग-७, अ-१ से १३

४७. निरयावलिया —— प्रथम श्रुतस्कन्ध, प्रथम वर्ग, दूसरा वर्ग

कर रहे हैं। उत्तराध्ययन के अनुसार श्रेणिक सम्राट् ने अनाथी मुनि से नाथ और अनाथ के गुरु-गंभीर रहस्य को समझकर जैन धर्म स्वीकार किया था।[४८] सम्राट् श्रेणिक क्षायिक-सम्यक्त्व-धारी थे। उन्होंने तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति का भी बंध किया था, यद्यपि वे न तो बहुश्रुत थे और न प्रज्ञप्ति जैसे आगमों के वेत्ता ही थे, तथापि सम्यक्त्व के कारण ही वे तीर्थंकर जैसे गौरवपूर्ण पद को प्राप्त करेंगे।[४९]

बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार श्रेणिक की पाँच सौ रानियाँ थीं।[५०] उन्होंने उसे तथागत बुद्ध का भक्त माना है। कितने ही विद्वानों की यह धारणा है कि जीवन के पूर्वार्ध में वह जैन था और उत्तरार्ध में बौद्ध बन गया था, इसलिये जैन ग्रन्थों में उसके नरक जाने का उल्लेख है। पर उन विद्वानों की यह धारणा उचित नहीं है। हम पूर्व ही लिख चुके हैं कि आगामी चौबीसी में वे पद्मनाभ नामक प्रथम तीर्थंकर होंगे।[५१] हमारी दृष्टि से यह हो सकता है कि जब राजा प्रसेनजित ने श्रेणिक को निर्वासित किया था, उस समय उन्होंने प्रथम विश्राम नन्दीग्राम में लिया था। वहाँ के प्रमुख ब्राह्मणों ने राजकोप के भय से न उन्हें भोजन दिया और न विश्रान्ति के लिये आवास ही प्रदान किया। विवश होकर नन्दीग्राम के बाहर बौद्ध-विहार में उन्हें रुकना पड़ा और वहाँ के बौद्ध भिक्षुओं ने उन्हें स्नेह प्रदान किया हो, जिससे उनके अन्तर्मानस में बौद्धधर्म के प्रति सहज अनुराग जाग्रत हुआ हो। इसलिये निर्ग्रन्थ (जैनधर्म) का परम उपासक होने पर भी तथागत बुद्ध के प्रति भी उसमें स्नेह रहा हो और उस स्नेह के कारण ही उन्होंने बुद्ध से धार्मिक चर्चाएं भी की हों। उपर्युक्त पंक्तियों में हमने देखा है कि श्रेणिक एक बहुत तेजस्वी शासक था। वह जिनशासन की महान् प्रभावना करने वाला था। देवों के द्वारा की गई परीक्षा में भी वह समुत्तीर्ण हुआ था।[५२] उसका अनूठा कृतित्व जैनधर्म की गौरव-गरिमा में चार चाँद लगाने वाला था।

प्रस्तुत आगम में श्रेणिक सम्राट् के राजकुमारों का वर्णन है, उनके जीवन-प्रसंगों के सम्बन्ध में भी यत्र-तत्र चर्चाएं आई हैं। विहल्लकुमार का सम्बन्ध हार हाथी के प्रसंग को लेकर उस युग के महान् संग्राम महाशिला से है किन्तु विस्तारभय से हम उन सभी का उल्लेख न कर अभयकुमार के सम्बन्ध में ही यहाँ कुछ चिन्तन प्रस्तुत कर रहे हैं।

अभयकुमार प्रबल प्रतिभा का धनी था। जैन और बौद्ध दोनों ही परम्पराएं उसे अपना अनुयायी मानती हैं। जैन आगम साहित्य के अनुसार वह भगवान् महावीर के पास आर्हती दीक्षा स्वीकार करता है और त्रिपिटक साहित्य के अनुसार वह बुद्ध के पास प्रव्रजित होता है।

जैन साहित्य की दृष्टि से वह श्रेणिक की नन्दा नामक रानी का पुत्र था।[५३] नन्दा वेन्नातटपुर[५४] के श्रेष्ठी धनावह की पुत्री थी। कुमारावस्था में श्रेणिक वहाँ पहुँचे थे और उन्होंने नन्दा के साथ पाणिग्रहण किया था। आठ वर्ष तक अभयकुमार अपनी माँ के साथ ननिहाल में रहे थे और उसके पश्चात् वे राजगृह आ गये।[५५]

---

४८. उत्तराध्ययन सूत्र, अ. २०

४९. न सेणिओ आसि तया बहुस्सुओ, न यावि पन्नत्तिधरो न वायगो।
सो आगमिस्साइ जिणो भविस्सई; समिक्ख पन्नाई वरं खु दंसणं ॥

५०. विनयपिटक महावग्ग ९/१/१५

५१. जओ खाइगसम्मदिट्ठी तुमं आगमिस्साए य उस्सप्पिणीए तत्तो उवट्टित्ता पउमनाभनामो पढमतित्थयरो भविस्ससि।
—महावीर चरित्र (गुणचन्द्र)

५२. (क) त्रिषष्ठि १०/९. (ख) निरयावलिया टीका पत्र-५-१

५३. (क) ज्ञाताधर्मकथा १/१ (ख) निरयावलिया-२३ (ग) अनुत्तरोपपातिक १/१

५४. यह नगर दक्षिण की कृष्णानगरी नदी जहाँ पूर्व के समुद्र से मिलती है वहाँ होना चाहिए,
देखिये — भगवान् महावीर : एक अनुशीलन : देवेन्द्रमुनि शास्त्री

५५. भरतेश्वर-बाहुबली, वृत्ति पत्र ३६

अभय का रूप अत्यधिक सुन्दर था। वे साम, दाम, दण्ड, भेद, प्रदान, व्यापार नीति में निष्णात थे। ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा और अर्थशास्त्र में कुशल थे। चारों प्रकार की बुद्धियों के धनी थे। वे श्रेणिक सम्राट् के प्रत्येक कार्य के लिए सच्चे परामर्शक थे। वे राज्यधुरा को धारण करने वाले थे। वे राज्य (शासन), राष्ट्र (देश), कोष, कोठार (अन्नभण्डार), सेना, वाहन, नगर और अन्त:पुर की अच्छी तरह देखभाल करते थे।[५६]

अभयकुमार राजा श्रेणिक के मनोनीत मन्त्री थे।[५७] वे जटिल से जटिल समस्याओं को अपनी कुशाग्र बुद्धि से एक क्षण में सुलझा देते थे। उन्होंने मेघकुमार की माता धारिणी[५८] और कुणिक की माता चेलना[५९] का दोहद अपनी कुशाग्र बुद्धि से सम्पन्न किया था। अपनी लघुमाता चेलणा और श्रेणिक का विवाह सम्बन्ध भी सानन्द सम्पन्न कराया था। उनकी बुद्धि के चमत्कार की अनेक घटनाएं जैन साहित्य में अंकित हैं। उज्जयिनी के राजा चण्डप्रद्योत के विकट राजनैतिक संकट से श्रेणिक को मुक्त किया था।[६०]

श्रमणधर्म को ग्रहण करना अत्यधिक कठिन है, यह अभयकुमार अच्छी तरह से जानते थे। एक बार एक द्रुमक (लकड़हारे) ने गणधर सुधर्मा के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। लोगों ने उसका परिहास किया। अभयकुमार को ज्ञात होने पर उन्होंने सार्वजनिक स्थान पर तीन एक-एक करोड़ स्वर्णमुद्राओं का अम्बार लगाया और यह उद्घोषणा करवायी कि ये तीन-कोटि स्वर्णमुद्राएं वह व्यक्ति ले सकता है जो जीवन भर के लिये स्त्री, अग्नि और सचित्त पानी का परित्याग करे। स्वर्ण मुद्राओं को निहार कर सभी का मन ललचाया, किन्तु शर्त को सुनकर कोई भी आगे नहीं बढ़ सका। अभयकुमार ने उन सभी आलोचकों के सामने कहा — द्रुमक मुनि कितना महान् है, जिसने जीवन भर के लिये स्त्री, अग्नि और सचित्त पानी का परित्याग किया है। आप उस का उपहास करते हैं। सभी द्रुमक मुनि के महान् त्याग से प्रभावित हुये और उन्हें श्रमण धर्म का महत्त्व ज्ञात हुआ।[६१]

सूत्रकृतांग-नियुक्ति[६२] तथा त्रिषष्ठिशलाका-पुरुषचरित्र[६३] के अनुसार अभयकुमार ने आर्द्रकुमार को धर्मोपकरण उपहार के रूप में प्रेषित किये थे, जिससे वह प्रतिबुद्ध होकर श्रमण बना था। अभयकुमार के संसर्ग में आकर ही राजगृह का क्रूर कसाई काल शौकरिक का पुत्र सुलसकुमार भगवान् महावीर का परमभक्त बना था।[६४] अभयकुमार की धार्मिक भावना के अनेक उदाहरण जैन साहित्य में उट्टङ्कित हैं। कथाकार कहते हैं — एक बार अभय ने भगवान् महावीर के समक्ष जिज्ञासा प्रस्तुत की कि अन्तिम मोक्षगामी राजा कौन होगा ? भगवान् ने कहा — वीतभय का राजा उदायन जो मेरे निकट संयम स्वीकार कर चुका है। भगवान् की यह बात सुनकर अभय मन ही मन सोचने लगा — यदि मैं राजा बन गया तो मोक्ष नहीं जा सकूंगा। अत: कुमारावस्था में ही दीक्षा ग्रहण कर लूं। उसने सम्राट् श्रेणिक से अनुमति प्रदान करने के हेतु नम्र निवेदन किया। श्रेणिक ने कहा — अभी तुम्हारी उम्र दीक्षा लेने की नहीं है। दीक्षा लेने की उम्र मेरी है। तुम राजा बनकर आनन्द का

---

५६. ज्ञाताधर्मकथा १/१
५७. भरतेश्वरबाहुबली, वृत्ति पत्र ३८
५८. ज्ञाताधर्मकथा १/१
५९. निरयावलिया १
६०. (क) आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्ध, पत्र १५९, १६३
(ख) त्रिषष्ठि १०-११-१२४ से २९३
६१. धर्मरत्नप्रकरण — अभयकुमार कथा १/३०
६२. सूत्रकृतांगनिर्युक्ति टीका सहित १/६/१३६
६३. त्रिषष्ठि १०/७/१७७-१७९, भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, पृष्ठ ६७
६४. योगशास्त्र-स्वोपज्ञवृत्ति-१/३०, पृष्ठ ९१ से ९५ — आचार्य हेमचन्द्र

उपभोग करो। अभयकुमार के अत्यधिक आग्रह पर श्रेणिक ने कहा — जिस दिन रुष्ट होकर मैं तुम्हें कह दूँ — दूर हट जा, मुझे अपना मुंह न दिखा; उसी दिन तू श्रमण बन जाना।

कुछ समय के पश्चात् भगवान् महावीर राजगृह में पधारे। भगवान् के दर्शन कर महारानी चेलना के साथ राजा लौट रहा था। सरिता के किनारे राजा श्रेणिक ने एक मुनि को ध्यानस्थ देखा। सर्दी बहुत ही तेज थी। महारानी का हाथ नींद में ओढ़ने के वस्त्र से बाहर रह गया और हाथ ठिठुर गया था। उसकी नींद उचट गई और मुनि का स्मरण आने पर अचानक मुंह से निकल पड़ा — 'वे क्या करते होंगे !' रानी के शब्दों ने राजा के मन में अविश्वास पैदा कर दिया। प्रातःकाल वह भगवान् के दर्शन को चल दिया। चलते समय अभयकुमार को यह आदेश दिया कि चेलना के महल को जला दो, यहाँ पर दुराचार पनपता है। अभयकुमार ने राजमहल में से रानियों को और बहुमूल्य वस्तुओं को निकाल कर उसमें आग लगा दी। राजा श्रेणिक ने महावीर से प्रश्न किया। महावीर ने कहा — चेलना आदि सभी रानियाँ पूर्ण पतिव्रता और शीलवती हैं। राजा श्रेणिक मन ही मन पश्चात्ताप करने लगा। वह पुनः समवसरण से शीघ्र लौटकर राजभवन की ओर चल दिया। मार्ग में अभयकुमार मिल गया। राजा के पूछने पर अभयकुमार ने महल को जला देने की बात कही। राजा ने कहा — तुमने अपनी बुद्धि से काम नहीं लिया? अभय बोला — राजन् ! राजाज्ञा को भंग करना कितना भयंकर है यह मुझे अच्छी तरह से ज्ञात था।

राजा को अपने अविवेकपूर्ण कृत्य पर क्रोध आ रहा था। वे अपने क्रोध को वश में न रख सके और उनके मुंह से सहसा शब्द निकल पड़े — 'यहां से चला जा। भूलकर भी मुझे मुंह न दिखाना।' अभयकुमार तो इन शब्दों की ही प्रतीक्षा कर रहा था। उसने राजा को नमस्कार किया और भगवान् के चरणों में पहुंचकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

राजा श्रेणिक महलों में पहुँचा। सभी रानियाँ और बहुमूल्य वस्तुएँ सुरक्षित देखकर उसे अपने वचनों के लिए अपार दुःख हुआ। वह भगवान् के पास पहुँचा। पर अभय राजा श्रेणिक के पहुँचने के पूर्व ही दीक्षित हो चुका था। [६५]

अन्तकृद्दशांग सूत्र में अभय की माता नन्दा के भी दीक्षित होकर मोक्ष जाने का उल्लेख है। [६६] अभयकुमार मुनि ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, गुणरत्नतप की आराधना की। उनका शरीर अत्यन्त कृश हो गया। [६७] तथापि साधना का अपूर्व तेज उनके मुख पर चमक रहा था। अभयकुमार में प्रबल प्रतिभा थी। कुशाग्र बुद्धि के वे धनी थे। बुद्धि की सार्थकता इसी में है कि आत्म-तत्त्व की विचारणा की जाय। — "बुद्धे फलं तत्त्वविचारणं च"। आज भी व्यापारी वर्ग अभय की बुद्धि को स्मरण करता है। नूतन वर्ष के अवसर पर बहीखातों में लिखित रूप से अभय की-सी बुद्धि प्राप्त करने की कामना की जाती है।

बौद्ध साहित्य में अभयकुमार का नाम अभयराजकुमार मिलता है। उसकी माता उज्जयिनी की गणिका पद्मावती थी। [६८] जब श्रेणिक बिम्बिसार ने उसके अद्भुत रूप की बात सुनी तो वह उसके प्रति आकृष्ट हो गया। उसने अपने मन की बात राजपुरोहित से कही। पुरोहित ने कुम्पिर नामक यक्ष की आराधना की। वह यक्ष श्रेणिक बिम्बिसार को लेकर उज्जयिनी गया। वहाँ पद्मावती वेश्या के साथ सम्पर्क हुआ। अभयराजकुमार अपनी माता के पास सात वर्ष तक रहा और उसके पश्चात् अपने पिता के पास राजगृह आ गया। [६९]

---

६५. भरतेश्वरबाहुबली वृत्ति पत्र ३८ से ४०

६६. अन्तकृद्दशांगसूत्र वर्ग-७

६७. अनुत्तरौपपातिक सूत्र १/१०

६८. गिल्गिट मेनुस्क्रिप्ट के अभिमतानुसार वह वैशाली की गणिका आम्रपाली से उत्पन्न बिम्बिसार का पुत्र था। (खण्ड ३, २ पृ २२) थेरगाथा-अट्ठकथा ६४ में श्रेणिक से उत्पन्न आम्रपाली के पुत्र का नाम मूल पाली साहित्य में "विमल कोडञ्ज" आता है जो आगे चलकर बौद्ध भिक्षु बना।

६९ थेरीगाथा अट्ठकथा ३१-३२

अभय राजकुमार होने पर भी रथविद्या में निपुण था।[७०] एक बार उस ने प्रकृष्ट प्रतिभा से सीमाविवाद के जटिल प्रश्न को सुलझाया था, जिससे प्रसन्न होकर बिम्बिसार ने एक अत्यन्त सुन्दरी नर्तकी उसे उपहार के रूप में प्रदान की।[७१]

मज्झिमनिकाय[७२] के अभयकुमारसुत्त में एक प्रसंग है — एक बार तथागत बुद्ध राजगृही के वेणुवन कलन्दक निवास में विचरण कर रहे थे। उस समय राजकुमार अभय निगण्ठ नायपुत्त के पास पहुँचा। निगण्ठ नायपुत्त ने अभय से कहा — 'राजकुमार ! श्रमण गौतम के साथ तुम शास्त्रार्थ करो तो तुम्हारी कीर्ति-कौमुदी दिग्‌दिगन्त में फैल जायेगी और जनता में यह चर्चा होगी कि अभय ने इतने महर्द्धिक श्रमण गौतम के साथ शास्त्रार्थ किया है।' अभय ने पूछा — 'भन्ते ! मैं शास्त्रार्थ का प्रारम्भ कैसे करूँ ?'

निगण्ठ नायपुत्त ने कहा — 'तुम बुद्ध से पूछना कि क्या तथागत ऐसे वचन बोल सकते हैं जो दूसरों को अप्रिय हों ? यदि वे स्वीकार करें तो पूछना कि फिर पृथग्-जन (संसारी जीव) और तथागत में क्या अन्तर है ? यदि वे नकारात्मक उत्तर दें तो पूछना कि आपने देवदत्त के दुर्गतिगामी, नैरयिक, कल्पभर-नरकवासी, अचिकित्सक की भविष्यवाणी क्यों की ? वह आप की प्रस्तुत भविष्यवाणी से कुपित हुआ है। इस तरह दोनों ओर से प्रश्न पूछने पर श्रमण गौतम न उगल सकेगा और न निगल सकेगा। जैसे किसी पुरुष के गले में लोहे की वंशी फंस जाये तो वह न उगल सकता है और न निगल सकता है, यही स्थिति बुद्ध की होगी।'

अभय राजकुमार निगण्ठ नायपुत्त को अभिवादन कर बुद्ध के पास पहुँचा। अभिवादन कर एक ओर बैठ गया, पर शास्त्रार्थ का समय नहीं था। अतः अभय ने सोचा — कल तथागत बुद्ध को घर पर बुलवाकर ही शास्त्रार्थ करूंगा ! उसने बुद्ध को भोजन का निमन्त्रण दिया और अपने राजप्रासाद में चला आया। दूसरे दिन मध्याह्न में चीवर पहन कर और पात्र लेकर बुद्ध अभय के राजप्रासाद में पहुँचे। बुद्ध को अपने हाथों से उसने श्रेष्ठ भोजन समर्पित किया। जब बुद्ध पूर्ण रूप से तृप्त हो गये तो राजकुमार अभय नीचे आसन पर बैठ गये और उन्होंने वाद प्रारम्भ किया — भन्ते ! क्या तथागत ऐसे वचन बोल सकते हैं जो दूसरों को अप्रिय हों ?

बुद्ध — एकान्त रूप से ऐसा नहीं कहा जा सकता।

यह सुनते ही अभय राजकुमार बोल उठा — भन्ते ! निगण्ठ नष्ट हो गया।

बुद्ध के पूछने पर उसने स्पष्टीकरण करते हुए कहा — भन्ते ! मैं निगण्ठ नायपुत्त के पास गया था। उन्होंने ही मुझे आप से यह दुधारा प्रश्न पूछने के लिए उत्प्रेरित किया था। उनका यह मत था कि इस प्रकार प्रश्न पूछने पर गौतम न उगल सकेगा और न निगल सकेगा।

अभय राजकुमार की गोद में एक नन्हा-मुन्ना बैठा हुआ क्रीड़ा कर रहा था। उसे लक्ष्य में लेकर बुद्ध ने कहा — राजकुमार, तुम्हारे (या धाय के) प्रमाद से यह शिशु कदाचित् मुंह में काष्ठ का टुकड़ा या ढेला डाल ले तो तुम क्या करोगे ?

मैं उसे निकालूँगा भन्ते ! यदि वह सीधी तरह से निकालने नहीं देगा तो बायें हाथ से उसका सिर पकड़ कर दाहिने हाथ से अंगुली टेढ़ी करके रक्त सहित भी निकाल दूंगा ! क्योंकि उस पर मेरा स्नेह है।

बुद्ध — राजकुमार ! तथागत अतथ्य, अनर्थयुक्त और अप्रिय वचन नहीं बोलते। तथ्य सहित होने पर भी यदि अनर्थ करने वाला वचन हो तो उसे भी नहीं बोलते। जो वचन तथ्ययुक्त सार्थक होता है, फिर भले ही प्रिय हो या अप्रिय, कालज्ञ

---

७०. मज्झिमनिकाय अभयराजकुमारसुत्त

७१. धम्मपद अट्ठकथा १३-४

७२. मज्झिमनिकाय अभयकुमारसुत्त प्रकरण-७६

तथागत उसे बोलते हैं। क्योंकि उनकी प्राणियों पर दया है।

अभय राजकुमार — भन्ते ! क्या आप पहले से ही मन में यह विचार कर रखते हैं कि इस प्रकार का प्रश्न करने पर मैं ऐसा उत्तर दूंगा ?

बुद्ध — तुम रथ-विद्या के निष्णात हो। रथ का यह कौन सा अंग-प्रत्यंग है, यदि कोई तुम से यह पूछे तो क्या तुम उसका पहले से ही उत्तर सोच-समझ कर रखते हो ? या समय पर ही तुम्हें भासित हो जाता है ?

अभयकुमार — भन्ते ! मैं रथ का विशेषज्ञ हूँ। इसलिए मुझे उसी समय ज्ञात हो जाता है।

बुद्ध — राजकुमार ! तथागत को भी उसी क्षण भासित हो जाता है, क्योंकि उनका मन अच्छी तरह से सधा हुआ है।

अभय — आश्चर्य भन्ते ! आपने अनेक पर्याय से धर्म को प्रकाशित किया है। मैं आपकी शरण में आता हूँ। धर्म और भिक्षु संघ मुझे अंजलिबद्ध शरणागत स्वीकार करें।

संयुक्तनिकाय में भी अभयकुमार का बुद्ध से साक्षात्कार होने का उल्लेख है। वह बुद्ध से पूर्ण-काश्यप की मान्यता से सम्बन्धित एक प्रश्न करता है।[७३] धम्मपद अट्ठकथा के अनुसार अभयकुमार को स्रोतापत्तिफल[७४] उस समय प्राप्त होता है जब वह नर्तकी की मृत्यु से खिन्न होकर बुद्ध के पास गया और बुद्ध ने धर्मोपदेश दिया।[७५] थेरगाथा अट्ठकथा के अनुसार अभय को स्रोतापत्तिफल उस समय प्राप्त हुआ जब तथागत ने तालच्छिगुलुपमसुत्त का उपदेश दिया था।[७६] वह श्रेणिक बिम्बिसार की मृत्यु से अत्यन्त उदास होकर बुद्ध के पास पहुँचा, प्रव्रज्या ग्रहण की और अर्हत् पद प्राप्त किया।[७७] भिक्षु बनने के पश्चात् उसने अपनी माता पद्मावती को भी उद्बोधन दिया और उसने भिक्षुणी बनकर अर्हत् पद प्राप्त किया।[७८]

जैन और बौद्ध साक्ष्यों के आलोक में यह स्पष्ट परिज्ञात होता है कि अभयकुमार और अभयराजकुमार ये दोनों पृथक्-पृथक् व्यक्ति रहे होंगे क्योंकि जैन दृष्टि से उसकी माता वणिक् कन्या है, वह राजा श्रेणिक का प्रधानमन्त्री है और महावीर के पास दीक्षा ग्रहण करता है जबकि बौद्ध दृष्टि से वह एक गणिका का पुत्र है, सफल रथिक है, निगण्ठ धर्म का परित्याग कर बौद्ध धर्म को स्वीकार करता है और अन्त में बुद्ध के पास भिक्षु बनता है। यदि अभय एक ही व्यक्ति होता तो महावीर और बुद्ध इन दोनों के पास वह किस प्रकार दीक्षा ले सकता था ? यह सम्भव है कि राजा श्रेणिक के अनेक पुत्र थे, उनमें एक का नाम अभय रहा हो और दूसरे का नाम अभयराजकुमार रहा हो।[७९]

जैन दीक्षा का उल्लेख प्रस्तुत आगम[८०] में है, जिसका रचनाकाल पण्डितप्रवर दलसुख मालवणिया प्रभृति विज्ञों ने

---

७३. संयुक्तनिकाय, अभयसुत्त ४४/६/६

७४. स्रोतापत्ति — धारा में आ जाना। निर्वाण के मार्ग में आरूढ हो जाना, जहां से गिरने की कोई संभावना न हो। योग-साधना करने वाला भिक्षु जब सत्कायदृष्टि, विचिकित्सा और शीलव्रत परामर्शक, इन तीन बंधनों को तोड़ देता है तब वह स्रोतापन्न कहा जाता है। स्रोतापन्न व्यक्ति अधिक से अधिक सात बार जन्म लेता है, फिर अवश्य ही निर्वाण प्राप्त करता है।

७५. धम्मपद-अट्ठकथा १३/४

७६. थेरगाथा-अट्ठकथा १/५८

७७. (क) थेरगाथा-२६
(ख) थेरगाथा-अट्ठकथा खण्ड १, पृ. ८३-८४

७८. थेरगाथा-अट्ठकथा ३१-३२

७९. (क) आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन, पृ. ३५९
(ख) भगवान् महावीर : एक अनुशीलन

८०. अनुत्तरौपपातिक-१/१०

विक्रम पूर्व दूसरी शताब्दी माना है।[८१] बौद्ध दीक्षा का उल्लेख 'थेराअपदान'[८२] व अट्ठकथा में है। पिटक साहित्य में थेराअपदान की रचना सबसे बाद की मानी जाती है और अट्ठकथा तो उससे भी बाद की रचना है।[८३] अतः अभय का जैनधर्मी होना ही अधिक तर्कसंगत व प्रमाण पुरस्सर है।

प्रस्तुत आगम के प्रथम वर्ग के दश अध्ययनों में से सातवाँ अध्ययन लष्टदन्त राजकुमार का है और द्वितीय वर्ग में भी तीसरा अध्ययन लष्टदन्त राजकुमार का है। दोनों की माता धारिणी और पिता श्रेणिक सम्राट् है। इसकी संगति क्या है ? यह अन्वेषणीय है। सम्भव है लष्टदन्त नाम के दो राजकुमार रहे हों, एक प्रथम और एक द्वितीय। महासती मुक्तिप्रभाजी ने टिप्पण में इस सम्बन्ध में विचार किया है।

तृतीय वर्ग में धन्यकुमार, सुनक्षत्रकुमार, ऋषिदास, पेल्लक, रामपुत्र, चन्द्रिक, पृष्टिमात्रिक, पेढालपुत्र, पोट्टिल्ल और वेहल्ल इन दश कुमारों का वर्णन है।

धन्यकुमार काकन्दी की भद्रा सार्थवाही के पुत्र थे। चारों ओर वैभव अठखेलियाँ कर रहा था। किन्तु भगवान् महावीर के त्याग-वैराग्य से छलछलाते हुए पावन प्रवचनों को श्रवण कर संयम के कठोर-मार्ग पर एक वीर सेनानी की भाँति बढ़ते हैं। उनके तपोमय जीवन का अद्‌भुत वर्णन इसमें किया गया है। धन्य अनगार के तपवर्णन को पढ़कर किस का सिर श्रद्धा से नत नहीं होगा ! मज्झिमनिकाय के महासिंहनादसुत्त[८४] में तथागत बुद्ध ने अपने किसी एक पूर्वभव में इस प्रकार की उत्कृष्ट तपःसाधना की थी। बुद्ध ने छह वर्ष तक जो तप तपा था वह भी कुछ इस तरह से मिलता-जुलता है। कविकुलगुरु कालिदास ने भी कुमारसम्भव[८५] में पार्वती के उग्र तप का सजीव वर्णन किया है। उन सभी वर्णनों को पढ़ने के पश्चात् जब हम धन्यकुमार के वर्णन को पढ़ते हैं तो ऐसा स्पष्ट लगता है कि धन्यकुमार का वर्णन अधिक सजीव है। उन्होंने जीवनभर छट्ठ-छट्ठ तप करने की प्रतिज्ञा की थी। पारणे में केवल आचाम्ल व्रत के रूप में रूक्ष भोजन ग्रहण करते थे। कोई गृहस्थ जिस अन्न को बाहर फेंकने के लिए प्रस्तुत होता उसे लेकर २१ बार पानी से धोकर वे उसे ग्रहण करते और उसी पानी का उपयोग करते। तप से उनका शरीर अस्थिपंजर हो गया था। देखिये उनके तप का आलंकारिक वर्णन — जिसमें व्यावहारिक उपमाओं का प्रयोग हुआ है और वर्ण्य विषय में सजीवता आ गई है। उनके प्रस्तुत कथन में पर्याप्त सार्थकता के दर्शन होते हैं— 'अक्खसुत्तमाला विव-गणेज्जमाणेहिं पिट्ठिकरंडगसंधीहिं, गंगातरंगभूएणं उरकडगदेसभाएणं, सुक्कसप्पसमाणेहि बाहाहिं, सिढिलकडाली-विव लंबंतेहि य अग्गहत्थेहिं, कंपमाणवाइए विव वेवमाणीए सीसघडीए' अर्थात् 'तपस्वी धन्य मुनि की पीठ की हड्डियाँ अक्षमाला की भाँति एक-एक गिनी जा सकती थीं, वक्षःस्थल की हड्डियां गंगा की लहरों के समान अलग-अलग दिखलाई पड़ती थीं। भुजायें सूखे हुए सांप की तरह कृश हो गई थीं। हाथ घोड़े के मुँह बाँधने के तोबरे के समान शिथिल होकर लटक गये थे और सिर वातरोगी के सिर की भाँति काँपता रहता था।'

इस तरह इसमें अनेक उपमाएँ और दृष्टान्त भरे पड़े हैं।

कितने ही लोगों का मानना है कि आगम-साहित्य नीरस है। आगमों की कथाएँ एक-सी शैली, वर्ण्यविषय की समानता तथा कल्पना और कलात्मकता के अभाव में पाठकों को मुग्ध नहीं करती हैं। उनमें अतिप्राकृतिक तत्त्वों की भरमार है। पर उनका यह मानना पूर्ण रूप से उचित नहीं है। उसमें आंशिक सच्चाई हो सकती है। ऊपर-ऊपर से आगम को पढ़ने के कारण ही उनमें यह धारणा पैदा हुई हो, पर जब हम गहराई में अवगाहन करते हैं तो उन कथाओं से नूतन-नूतन तथ्य उद्‌घाटित होते हैं। भारतीय संस्कृति की संरचना और भारतीय प्राच्य विद्याओं के विकसन में उनका अपूर्व योगदान रहा।

---

८१. आगमयुग का जैनदर्शन, पृ. २८, प्रकाशक — सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा
८२. थेराअपदान : भद्दियवग्गो, अभयत्थेरअपदानं
८३. खुद्दकनिकाय खण्ड ७, नालन्दा, भिक्षु जगदीश काश्यप
८४. योधिराजकुमारसुत्त, दीर्घनिकाय कस्सपसिंहनादसुत्त
८५. कुमारसम्भव सर्ग — पार्वतीप्रकरण

आधुनिक कहानियों व उपन्यासो की भाँति भले ही वे दिलचस्प न हो, पाठको के मन को भले ही पकड़कर न रखते हों, किन्तु उनमें जीवनोत्थान की प्रशस्त प्रेरणाएँ रही हुई हैं, वे सांस्कृतिक दृष्टि से अपूर्व धरोहर के रूप मे हैं।

प्रस्तुत आगम विषय-विभाग की दृष्टि से धर्मकथानुयोग के अन्तर्गत आता है। यों चरणकरणानुयोग का भी प्रतिनिधित्व करता है। प्रस्तुत आगम में जैन-परम्परा के अनुसार तप का विश्लेपण किया गया है। जैनसंस्कृति में तप की उत्कृष्ट-साधना प्रधान रही है। जितने भी तीर्थंकर हुए हैं वे तप के साथ ही प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं, [८६] तप के साथ ही केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त करते हैं और तप के साथ ही अपना प्रथम उपदेश प्रारम्भ करते हैं। भगवान् महावीर तपोविज्ञानी अद्वितीय महापुरुप थे। उन्होंने अपने समय में प्रचलित कोई देहदमन रूप वहिर्मुख तप का आन्तरिक साधना के साथ सामञ्जस्य स्थापित किया था। महावीर ने स्वयं भी और उनके शिष्य-शिष्याओं ने भी उत्कृष्ट तप की आराधना की थी। उसका उल्लेख हम इस आगम में पाते हैं और अन्य आगमों में भी। यही कारण है कि महावीर के शिष्यों के लिए बौद्ध वाङ्मय में तपस्वी और दीर्घ-तपस्वी विशेषण मिलते हैं। आवश्यकनिर्युक्ति में [८७] अनगार को तप में शूर कहा है। सुप्रसिद्ध टीकाकार मलयगिरि ने तप की परिभाषा करते हुए लिखा है — जो आठ प्रकार के कर्म को तपाता है — उसे नष्ट करने मे समर्थ होता है, वह तप हैं। [८८] तप से कर्म नष्ट होते हैं और आच्छन्न शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं। दाक्षिणात्य पवन चलते ही अनन्त गगन में मण्डराती हुई काली कजराली घटाएँ, एक क्षण में छिन्न-भिन्न हो जाती हैं वैसे ही तप रूपी पवन से कर्म रूपी वादल छँटने लगते हैं।

प्रस्तुत आगम में अनशन तप का उत्कृष्ट क्रियात्मक चित्रण हुआ है। अनशन तप वही साधक कर सकता है जिसकी शरीर पर आसक्ति कम हो। अनशन में अशन का त्याग तो किया ही जाता है, साथ ही इच्छाओं, कषायों और विषय-वासनाओं का त्याग भी किया जाता है। प्रारम्भ में साधक कुछ समय के लिए आहार आदि का परित्याग करता है, जो इत्वरिक तप के नाम से विश्रुत है। जीवन के अन्तिमकाल में वह जीवन पर्यन्त के लिए आहार आदि का त्याग कर देता है, जो यावत्कथित तप कहलाता है। धन्य अनगार और अन्य अनगारों ने इन दोनों ही प्रकार के तपों की आराधना की थी।

संलेखना जैन-साधना-विधि की एक प्रक्रिया है। जिस साधक ने अध्यात्म की गहन साधना की है, भेद-विज्ञान की बारीकियों को अच्छी तरह से समझा है, वही संलेखना और समाधि के द्वारा मरण को वरण कर सकता है। मरण के समय जो आहार आदि का त्याग किया जाता है, उस परित्याग में मृत्यु की चाह नहीं होती। संयमी साधक की सभी क्रियाएँ संयम के लिए होती हैं। जो शरीर साधना में सहायक न रह कर बाधक बन गया हो, जिसको वहन करने से आध्यात्मिक गुणों की शुद्धि और वृद्धि न होती हो वह त्याज्य बन जाता है। उस समय स्वेच्छा से मरण को वरण किया जाता है। एक भ्रान्त धारणा है कि संथारा आत्महत्या है, पर यह सत्य नहीं है। आत्महत्या वह व्यक्ति करता है जो परिस्थितियों से उत्पीडित है, जिसकी मनोकामना पूर्ण नहीं होती हो, जिसका घोर अपमान हुआ हो, या कलह हुआ हो और जो तीव्र क्रोध के कारण विक्षिप्त-सा हो गया हो। वह व्यक्ति विविध प्रकार के प्रयोग कर जीवन का अन्त करता है। वह आत्महत्या करता है। उसके अन्तर्मानस में भय, कामनाएँ, वासनाएँ, उत्तेजनाएँ और कषाय रहा हुआ होता है। किन्तु संथारे में इन सभी का अभाव होता है, आत्मा के निज-गुणों को प्रकट करने की तीव्रतर भावना होती है। इसीलिए यदि पूर्व काल में किसी के साथ दुर्भावनाएँ या वैमनस्य हुआ हो तो वह स्वयं क्षमा-याचना करता है और अपनी ओर से क्षमा प्रदान भी करता है। संथारे में न किसी प्रकार की कीर्ति की कामना ही होती है और न कोई चाहना ही होती है, इसलिये वह आत्महत्या नहीं है अपितु साधना का मंगलमय पावन पथ है। [८९]

---

८६. (क) समवायांग-१, ९-८. (ख) आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १५०. (ग) उत्तरपुराण ५१/७०, पृष्ठ ३०

८७. तवसूरा अणगारा — आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ४५०

८८. आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, खण्ड-२ अध्याय १

८९. देखिए लेखक का जैनआचार-ग्रन्थ में संलेखना लेख (अप्रकाशित)।

प्रस्तुत आगम की भाषा और विषय अत्यधिक सरल होने के कारण उस पर न निर्युक्तियाँ लिखी गयीं, न भाष्य लिखा गया और न चूर्णियाँ ही। सर्वप्रथम आचार्य अभयदेव ने ही इस पर संस्कृत भाषा में वृत्ति लिखी है, जो शब्दार्थप्रधान और सूत्रस्पर्शी है, वृत्ति का ग्रन्थमान १९२ श्लोक प्रमाण है। वह वृत्ति सन् १९२० में आगमोदय समिति सूरत से प्रकाशित हुई और उसके पूर्व सन् १८७५ में कलकत्ता से धनपतसिंह ने प्रकाशित की थी। इस आगम का अंग्रेजी अनुवाद १९०७ में, L.D. Bar Nett से प्रकाशित हुआ है। पी. एल. वैद्य ने प्रस्तावना के साथ सन् १९३२ में इसका प्रकाशन करवाया। सन् १९२१ में इसका केवल मूलपाठ आत्मानन्द सभा भावनगर से प्रकाशित हुआ है। विक्रम संवत् १९९० में भावनगर से ही अभयदेववृत्ति के साथ गुजराती अनुवाद का एक संस्करण निकला। वीर संवत् २४४६ में आचार्य अमोलकऋषि ने हिन्दी में बत्तीस आगमों के प्रकाशन के साथ इसका भी प्रकाशन करवाया था। १९४० में गोपालदास जीवाभाई पटेल ने जैन साहित्य प्रकाशन समिति अहमदाबाद से और श्रमणी विद्यापीठ घाटकोपर, बम्बई से इसके मूल के साथ गुजराती अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। आचार्य श्री घासीलालजी म. ने संस्कृत टीका के साथ हिन्दी और गुजराती अनुवाद सन् १९५९ में जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट (सौराष्ट्र) से प्रकाशित करवाया। आचार्य श्री आत्मारामजी म. ने विवेचन युक्त एक शानदार संस्करण 'जैन शास्त्रमाला कार्यालय, लाहौर' से सन् १९३६ में प्रकाशित किया है। श्री विजयमुनि शास्त्री ने मूल हिन्दी टिप्पण व वृत्ति के साथ सम्पादित कर एक मनमोहक संस्करण प्रकाशित किया है। इस प्रकार आज तक अनुत्तरौपपातिकदशा के अनेक संस्करण प्रकाशित हुए हैं जिनकी अपनी महत्ता है।

प्रस्तुत संस्करण अनुत्तरौपपातिकदशा का एक अभिनव संस्करण है। इसमें शुद्ध मूलपाठ है, अर्थ तथा संक्षेप में विवेचन भी है, जो आगम के मूलभाव को स्पष्ट करता है। परिशिष्ट में टिप्पण दिये गये हैं जो बहुत ही सम्पूर्ण हैं। पारिभाषिक-शब्दकोष, अव्ययपद, क्रियापद, शब्दार्थ देने से आगम के गुरुगंभीर रहस्य सहज रूप से समझे जा सकते हैं।

परमविदुषी साध्वीरत्न स्वर्गीया महासती श्री उज्ज्वलकुमारीजी के नाम से जैन समाज भलीभाँति परिचित है। उन्हीं की सुशिष्या हैं धर्मभगिनी साध्वी मुक्तिप्रभाजी। गुरुणी की तरह उनमें भी प्रतिभा है। उनके द्वारा सम्पादित प्रस्तुत आगम में उनकी प्रतिभा यत्र-तत्र प्रस्फुटित हुई है। इस संस्करण की अपनी एक विशिष्टता है। इसमें परमादरणीय युवाचार्य श्री मधुकरमुनिजी की मधुर परिकल्पना को मूर्तरूप देने का सफल प्रयास किया गया है। बहिन मुक्तिप्रभाजी का यह प्रथम प्रयास प्रशंसनीय है। इसमें विद्वद्वरेण्य कलमकलाधर श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल का प्रकाण्ड पाण्डित्य भी स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हुआ है।

श्रमण-संघ के मनीषी मूर्धन्य मुनिगणों की वर्षों से यह परिकल्पना थी कि आगम के गुरुगंभीर रहस्यों को युगानुकूल सरल-सरस भाषा में प्रस्तुत किया जाय। आगम-बत्तीसी को शानदार रूप से प्रकाशित किया जाए, जिससे शोधार्थियों को और आत्मार्थियों को लाभ हो। मेरे परम श्रद्धेय गुरुदेव उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी म., जो युवाचार्य श्री मधुकरमुनिजी के अभिन्न साथी हैं, समय-समय पर मुझे प्रेरणा प्रदान करते रहे हैं। जब युवाचार्यश्री ने इस भगीरथ कार्य को सम्पन्न करने का दृढ़ संकल्प किया तो गुरुदेवश्री को हार्दिक आह्लाद हुआ। श्रमणसंघ के सन्त व सतीवृन्द तथा विज्ञों के अपूर्व सहयोग से यह कार्य युवाचार्यश्री के कुशल निर्देशन से आगे बढ़ रहा है। मुझे आशा ही नहीं अपितु दृढ़ विश्वास है कि युवाचार्यश्री का यह प्रशस्त श्रुतसेवा का कार्य युग-युग तक उन्हें यशस्वी बनाएगा। प्रस्तुत अनुत्तरौपपातिकदशा आगम-माला की एक सुन्दर बहुमूल्य मणि है जो भूले-भटके मानवों को दिव्य आलोक प्रदान करेगी। भौतिकवाद के स्थान पर अध्यात्मवाद की प्रतिष्ठा करेगी। पूर्व प्रकाशित आचारांग, उपासकदशा और ज्ञाताधर्मकथा की भाँति यह आगम भी जन-जन के मन को लुभायेगा, विद्वानों एवं सर्वसाधारण जिज्ञासुजनों में समुचित प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा, यही मंगल कामना है।

—देवेन्द्रमुनि शास्त्री

जैन स्थानक
नीमच सिटी (मध्यप्रदेश)
दि० २०-३-१९८१

विषयानुक्रम

परिशिष्ट

आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर द्वारा

प्रकाशित आगम-सूत्र

नाम	अनुवादक-सम्पादक
आचारांगसूत्र [दो भाग	श्री चन्द्र सुराना 'कमल'
उपासकदशांगसूत्र	डॉ छगनलाल शास्त्री (एम ए पी-एच. डी.)
ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र	प शोभाचन्द्र भारिल्ल
अन्कृद्दशागसूत्र	साध्वी दिव्यप्रभा (एम. ए , पी-एच डी)
अनुत्तरोववाइयसूत्र	साध्वी मुक्तिप्रभा (एम ए., पी-एच डी)
स्थानागसूत्र	पं. हीरालाल शास्त्री
समवायागसूत्र	पं हीरालाल शास्त्री
सूत्रकृतांगसूत्र	श्री चन्द्र सुराना 'सुराणा'
विपाकसूत्र	अनु प. रोशनलाल शास्त्री सम्पा पं शोभाचन्द भारिल्ल
नन्दीसूत्र	अनु. साध्वी उमरावकुवर 'अर्चना' सम्पा कमला जैन 'जीजी' एम. ए.
औपपातिकसूत्र	डॉ छगनलाल शास्त्री
व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र [चार भाग]	श्री अमरमुनि
राजप्रश्नीयसूत्र	वाणीभूषण रतनमुनि, स देवकुमार जैन
प्रज्ञापनासूत्र [तीन भाग]	जैनभूषण ज्ञानमुनि
प्रश्नव्याकरणसूत्र	अनु मुनि प्रवीणऋषि सम्पा पं शोभाचन्द्र भारिल्ल
उत्तराध्ययनसूत्र	श्री राजेन्द्रमुनि शास्त्री
निरयावलिकासूत्र	श्री देवकुमार जैन
दशवैकालिकसूत्र	महासती पुष्पवती
आवश्यकसूत्र	महासती सुप्रभा (एम ए. पीएच डी)
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र	डॉ. छगनलाल शास्त्री
अनुयोगद्वारसूत्र	उपाध्याय श्री केवलमुनि, स देवकुमार जैन,
सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्र	सम्पा मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
जीवाजीवाभिगमसूत्र [दो भाग]	श्री राजेन्द्र मुनि
निशीथसूत्र	मुनिश्री कन्हैयालाल जी 'कमल', श्री तिलोकमुनि
त्रीणिछेदसूत्राणि	मुनिश्री कन्हैयालाल जी 'कमल', श्री तिलोकमुनि
श्री कल्पसूत्र (पत्राकार)	उपाध्याय मुनि श्री प्यारचंद जी महाराज
श्री अन्तकृद्दशांगसूत्र (पत्राकार)	उपाध्याय मुनि श्री प्यारचंदजी महाराज

विशेष जानकारी के लिये सम्पर्कसूत्र

आगम प्रकाशन समिति

श्री ब्रज-मधुकर स्मृति भवन, पीपलिया बाजार, ब्यावर-३०५९०१

पंचमगणहर-सिरिसुहम्मसामिविरइयं नवमं अंगं

अनुत्तरोववाइयदसाओ

पञ्चमगणधर-श्रीसुधर्म-स्वामिविरचितं नवम अङ्गम्

अनुत्तरौपपातिकदशा

अर्हं

पढमो वग्गो

प्रथम अध्ययन

जाली

उत्क्षेप

१— तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। अज्जसुहम्मस्स समोसरणं। परिसा निग्गया जाव [धम्मं सोच्चा, निसम्म जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।] जम्बू पज्जुवासइ, जाव [जम्बू णामं अणगारे कासवगोत्तेणं सत्तुस्सेहे, समचउरंस-संठाण-संठिए, वज्जरिसह-नारायसंघयणे कणग-पुलग-निघस-पम्हगोरे, उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे ओराले, घोरे, घोरगुणे, घोरतवस्सी, घोरबंभचेरवासी, उच्छूढसरीरे संखित्त-विउल-तेउलेसे, चोद्दसपुव्वी, चउणाणोवगए, सव्वक्खर-सन्निवाई अज्जसुहम्मस्स थेरस्स अदूरसामन्ते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाण-कोट्ठोवगए, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं अज्ज-जम्बू णामं अणगारे जायसड्ढे जायसंसए जायकोउहल्ले, संजायसड्ढे संजायसंसए संजायकोउहल्ले, उप्पन्नसड्ढे उप्पन्नसंसए उप्पन्नकोउहल्ले, समुप्पन्नसड्ढे समुप्पन्न-संसए समुप्पन्नकोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेति, उट्ठेत्ता जेणामेव अज्जसुहम्मे थेरे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जसुहम्मे थेरे तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेति, करित्ता वंदति, नमंसति, वंदित्ता, नमंसित्ता अज्जसुहम्मस्स थेरस्स नच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे पंजलिउडे विणएणं] पज्जुवासमाणे एवं वयासी —

जइ णं भंते ! समणेणं जाव [भगवया महावीरेणं आइगरेणं, तित्थयरेणं, सयंसंबुद्धेणं, पुरिसुत्तमेणं, पुरिससीहेणं, पुरिसवरपुंडरीएणं, पुरिसवरगंधहत्थिणा, लोगमुत्तमेणं, लोगनाहेणं, लोगहिएणं, लोगपईवेणं, लोगपज्जोयगरेणं, अभयदएणं, सरणदएणं, चक्खुदएणं, मग्गदएणं, बोहिदएणं, धम्मदएणं, धम्मदेसएणं, धम्मनायगेणं धम्मसारहिणा, धम्मवरचाउरंत-चक्कवट्टिणा, अप्पडिहयवर-नाण-दंसण-धरेणं, वियट्टछउमेणं, जिणेणं, जावएणं, तिन्नेणं, तारएणं, बुद्धेणं, बोहएणं, मुत्तेणं, मोअगेणं, सव्वन्नेणं, सव्वदरिसणेणं सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिअं सासयं ठाणं] संपत्तेणं[1] अट्ठमस्स अंगस्स अंतगढ-दसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, नवमस्स णं भंते! अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं जाव[2] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

उस काल और उस समय में राजगृह नामक एक नगर था। आर्य सुधर्मा का वहां आगमन हुआ। धर्म-देशना सुनने के लिए परिषद् आई और धर्मदेशना सुनकर [हृदय में धारण कर जिस दिशा (ओर) से आई थी, उसी दिशा में] लौट गई। आर्य जम्बू अनगार आर्य सुधर्मास्वामी के पास संयम और तप से आत्मा को भावित

---

१. ज्ञाता. श्रुत. १, अ. १ मे संपत्तेण के स्थान पर 'उवगएणं' शब्द दिया गया है।

२ पूर्ववत् सू. १.

(वासित) करते हुए विहरण कर रहे थे। [आर्य जम्बू काश्यप गोत्र वाले थे। उनका शरीर सात हाथ प्रमाण ऊंचा था, पालथी मारकर बैठने पर शरीर की ऊंचाई और चौड़ाई बराबर हो, ऐसे समचतुरस्रसंस्थान वाले थे, उनका वज्रऋषभनाराच [१] संहनन था, सुवर्ण की रेखा के समान और पद्मराग (कमल-रज) के समान गौर वर्ण वाले थे, उग्रतपस्वी, दीप्ततपस्वी, तप्ततपस्वी, महातपस्वी, उदार, आत्म-शत्रुओं को विनष्ट करने में निर्भीक, घोरतपस्वी, दारुण-भीषण ब्रह्मचर्यव्रत के पालक, प्राप्त विपुल तेजोलेश्या को अपने ही शरीर में समा लेने वाले, चौदह पूर्वो के ज्ञाता, मतिज्ञानादि चार ज्ञानों के धारक, समस्त अक्षरसंयोग के ज्ञाता, उत्कुटुक आसन से स्थित, अधोमुखी, धर्म एवं शुक्ल ध्यान रूप कोष्ठक में प्रवेश किए हुए, संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।]

तत्पश्चात् आर्य जम्बूस्वामी जातश्रद्ध जातसंशय जातकौतूहल, संजातश्रद्ध संजातसंशय संजातकौतूहल, उत्पन्नश्रद्ध उत्पन्नसंशय उत्पन्नकौतूहल, समुत्पन्नश्रद्ध समुत्पन्नसंशय और समुत्पन्नकौतूहल होकर अपने स्थान से उठकर खड़े होते हैं, खड़े होकर जहां सुधर्मास्वामी स्थविर विराजमान थे, वहां पर आते हैं, आकर उन्होंने श्री सुधर्मास्वामी को दक्षिण ओर से तीन बार प्रदक्षिणा (परिक्रमा) की, प्रदक्षिणा करके स्तुति और नमस्कार किया, स्तुति-नमस्कार करके वे आर्य सुधर्मास्वामी के न अधिक दूर, न अधिक समीप शुश्रूषा और नमस्कार करते हुए सामने बैठे और हाथ जोड़कर विनय-पूर्वक उनकी उपासना करते हुए इस प्रकार बोले —

भगवन् ! यदि श्रुतधर्म की आदि करने वाले, गुरूपदेश के बिना स्वयं ही बोध को प्राप्त, पुरुषों में उत्तम, कर्म-शत्रुओं का विनाश करने में पराक्रमी होने के कारण पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों में पुंडरीक — श्रेष्ठ श्वेत कमल के समान, पुरुषों में गंधहस्ती के समान, अर्थात् जैसे गंधहस्ती की गंध से ही अन्य हस्ती भाग जाते हैं, उसी प्रकार जिनके पुण्य प्रभाव से ही ईति, भीति आदि का विनाश हो जाता है, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, लोक में प्रदीप के समान, लोक में विशेष उद्योत करने वाले, अभय देने वाले, शरणदाता, श्रद्धारूप नेत्र के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथि, चारों गतियों का अन्त करने वाले धर्म के चक्रवर्ती, कहीं भी प्रतिहत न होने वाले केवलज्ञान-दर्शन के धारक, घातिकर्म रूप छद्म के नाशक, रागादि को जीतने वाले और उपदेश द्वारा अन्य प्राणियों को जिताने वाले, संसार-सागर से स्वयं तिरे हुए और दूसरों को तारने वाले, स्वयं बोधप्राप्त और दूसरों को बोध देने वाले, स्वयं कर्मबन्धन से मुक्त और उपदेश द्वारा दूसरों को मुक्त करने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव—उपद्रवरहित, अचल—चलन आदि क्रिया से रहित, अरुज — शारीरिक मानसिक व्याधि की वेदना से रहित, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध और अपुनरावृत्ति-पुनरागमन से रहित सिद्धि गति नामक शाश्वत स्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा का यह अर्थ कहा है, तो भन्ते ! नवमे अङ्ग अनुत्तरौपपातिकदशा का भगवान् ने क्या अर्थ कहा है ?

विवेचन — ग्यारह अंगों में अन्तकृतसूत्र आठवां और अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र नौवां अंग है। अंतकृत्सूत्र के पश्चात् अनुत्तरौपपातिकसूत्र का क्रम इसलिए है कि दोनों सूत्रों में महापुरुषों के जीवन का, उनके वैभव-विलास, भोग और तप-त्याग का सुन्दर वर्णन किया गया है। अन्तर इतना ही है कि अंतकृत्सूत्र में ९२ महापुरुषों का वर्णन है और वे अपनी तप-साधना के द्वारा मुक्त हुए हैं, जबकि अनुत्तरौपपातिकसूत्र में वर्णित ३३ महापुरुष अपनी तपसाधना के द्वारा अनुत्तर विमानों में गए हैं। अतः अन्तकृत् के अनन्तर ही इस अंग का आना उचित है।

---

१ संहनन छह होते हैं। यह संहनन सबसे अधिक बलवान् होता है।

इस सूत्र की उत्थानिका श्री जम्बूस्वामी के प्रश्न से की गई है। जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी मोक्ष को प्राप्त हो चुके तब जम्बूस्वामी के चित्त में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि श्रमण भगवान् महावीर ने नौवें अंग में क्या अर्थ वर्णन किया है ? उनकी इस जिज्ञासा को देखकर श्री सुधर्मास्वामी इस सूत्र का विषय-वर्णन करते हैं।

वर्तमान ग्यारह अंग सुधर्मास्वामी की देन हैं। क्योंकि अङ्गसूत्रों में ऐसे भी पाठ प्राप्त होते हैं कि धन्ना अनगार ने एकादश अङ्गों का अध्ययन किया था और प्रस्तुत सूत्र में मुख्य रूप से धन्ना अनगार का ही विशद विवरण प्राप्त होता है, अत: प्रश्न समाधान चाहता है कि उन्होंने नौवें कौन से अङ्ग का अध्ययन किया होगा ? इस समय जो अनुत्तरौपपातिक-अंग है उसमें तो धन्ना अनगार का पादपोपगमन अनशन से निधन पर्यन्त और अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने तक का संपूर्ण वर्णन मिलता है। अतः निर्विवाद सिद्ध होता है कि यह सुधर्मास्वामी की ही वाचना है और वह भी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाणपद-प्राप्ति के अनन्तर ही की गई है।

इस सूत्र की हस्तलिखित प्रतियों में भी पाठ-भेद मिलते हैं, जैसे —

''तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे होत्था। तस्स णं रायगिहे नाम नयरस्य सेणिए नामं राया होत्था, वण्णओ। चेलणाए देवी। तत्थ णं रायगिहे नामं नयरे बहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसीभाए गुणसेलए नामं चेइए होत्था। तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे अज्ज-सुहम्मे नामं थेरे जाव गुणसेलए नामं चेइए तेणेव समोसढे, परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया ?''

''तेणं कालेणं तेणं समएणं जम्बू पज्जुवासमाणे एवं त्रयासी'' —

यहाँ प्रथम पाठ भाषादृष्टि से भी और अर्थदृष्टि से भी असंगत प्रतीत होता है। क्योंकि इस सूत्र की रचना श्रमण भगवान् महावीर के निर्वाण के अनन्तर ही हुई है और श्रेणिक महाराज तो भगवान् के विद्यमान होते हुए ही मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे। अतः शास्त्रोद्धार-समिति द्वारा प्राप्त शुद्ध प्रति में जो मूल सूत्र है, वह ठीक प्रतीत होता है।

सूत्र में विशेष विवरण धन्ना अनगार की उपमाओं से अलंकृत हुआ है। शेष सूत्रों को सरल जानकर बिना विवरण के छोड़ दिया गया है। ये आगम अर्थ की दृष्टि से सुगम होने पर भी ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं।

प्रस्तुत आगम में राजगृह नगर का केवल नाम ही दिया गया है। नगर का विशेष वर्णन औपपातिकसूत्र में आता है। अतः जानने की इच्छा वाले जिज्ञासु के लिए औपपातिकसूत्र ही देखना चाहिए।

२ — तए णं से सुहम्मे अणगारे जम्बू अणगारं एवं वयासी — एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव[१] संपत्तेणं नवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तिण्णि वग्गा पण्णत्ता।

जइ णं भंते ! समणेणं जाव[२] संपत्तेणं नवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तओ वग्गा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं समणेणं जाव[३] संपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?

एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव[४] संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा —

जालि-मयालि-उवयाली पुरिससेणे य वारिसेणे च ।

---

१. २ ३. ४ — देखिए सू. १

दीहदंते य लट्ठदंते य वेहल्ले वेहायसे अभए इ य कुमारे॥

जइ णं भंते ! समणेणं जाव[1] संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं समणेणं जाव[2] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

अनन्तर सुधर्मा अनगार जम्बू अनगार से इस प्रकार कहने लगे — जम्बू ! श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने नवमे अंग अनुत्तरौपपातिकदशा के तीन वर्ग कहे हैं। भंते ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने नवमे अंग अनुत्तरौपपातिकदशा के तीन वर्ग कहे हैं तो भन्ते ! अनुत्तरौपपातिकदशा के प्रथम वर्ग के श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त महावीर भगवान् ने कितने अध्ययन कहे हैं ?

जम्बू ! श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं —

१. जालि कुमार, २. मयालि कुमार, ३. उपजालि कुमार, ४. पुरुषसेन कुमार, ५. वारिषेण कुमार, ६. दीर्घदन्त कुमार, ७. लष्टदन्त (लट्ठराष्ट्रदान्त) कुमार, ८. वेहल्ल कुमार, ९. वेहायस कुमार, १०. अभय कुमार।

भन्ते ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं, तो भन्ते ! श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

विवेचन — प्रस्तुत सूत्र में विषय अत्यंत संक्षिप्त है। जम्बू स्वामी ने अत्यंत उत्कृष्ट भाव से आर्य सुधर्मा स्वामी के समक्ष अनुत्तरौपपातिकसूत्र के कितने वर्ग प्रतिपादित किये हैं, इस विषय में जिज्ञासा प्रकट की है। आर्य सुधर्मा अनगार ने उक्त सूत्र को तीन वर्ग में प्रतिपादित किया है और प्रथम वर्ग के दस अध्ययनों के नाम गिनाये हैं। नाम क्रम से निम्नलिखित हैं —

१. जालि कुमार, २. मयालि कुमार, ३. उपजालि कुमार, ४. पुरुषसेन कुमार, ५. वारिषेण कुमार, ६. दीर्घदन्त कुमार, ७. लष्टदन्त कुमार, ८. वेहल्ल कुमार, ९. वेहायस कुमार और १०. अभय कुमार।

प्रस्तुत सूत्र की सार्थकता या सप्रयोजनता किस प्रकार सिद्ध होती है, इस विषय में दृष्टिपात करें तो प्रतीत होता है कि जो भव्य जीव अपने वर्तमान जन्म में कर्मों का सम्पूर्ण रूप से क्षय करने में असमर्थ हों, वे इस जन्म के अनन्तर पांच अनुत्तरविमानों के परम-साता-वेदनीय-जनित सुखों का अनुभव करके आगामी भव में निर्वाण-पद प्राप्त कर सकते हैं।

इन सूत्रों से यह भी फलित होता है कि विनयपूर्वक अध्ययन किया हुआ ज्ञान ही सफल हो सकता है। जो शिष्य विनयपूर्वक गुरु से ज्ञान प्राप्त करना चाहता है उसको गुरु सम्यक्-ज्ञान से परिपूर्ण कर देते हैं। तथा जिसका आत्मा ज्ञान से परिपूर्ण होता है, वह सहज ही अन्य आत्माओं का उद्धार करने में समर्थ हो सकता है। अतः इस सूत्र से सिद्ध है कि गुरुभक्ति से ही श्रुत-ज्ञान की प्राप्ति होती है।

---

१. २. — देखिए सू. १

जाली कुमार

३ — एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, रिद्धत्थिमियसमिद्धे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया, धारिणी देवी। सीहो सुमिणे। जाली कुमारो। जहा मेहो अट्ठट्ठओ दाओ जाव [''अट्ठ हिरण्णकोडीओ, अट्ठ सुवण्णकोडीओ, गाहानुसारेण भाणियव्वं जाव पेसणकारियाओ, अन्नं च विपुलं धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्तरयण-संतसार-सावतेज्जं अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाउएं।

तए णं से जालीकुमारे एगमेगाए भारियाए एगमेगं हिरण्णकोडिं दलयति, एगमेगं सुवन्नकोडिं दलयति जाव एगमेगं पेसणकारिं दलयति, अन्नं च विपुलं धणकगण जाव परिभाएउं दलयति]।

तए णं से जाली कुमारे उप्पिं पासाय जाव [''वरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं वरतरुणि-संपउत्तेहिं बत्तीसइबद्धएहिं नाडएहिं उवगिज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधविउले माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरति'']।

''जम्बू !'' इस प्रकार संबोधित कर कहा — उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था। वह ऋद्ध, स्तिमित (स्थिर) और समृद्ध था। वहाँ गुणशीलक चैत्य था। वहाँ का राजा श्रेणिक था और उसकी धारिणी नाम की रानी थी। धारिणी रानी ने स्वप्न में सिंह को देखा। कुछ काल के पश्चात् रानी ने मेघ कुमार के समान जाली कुमार को जन्म दिया। जाली कुमार का मेघ कुमार के समान आठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ और आठ-आठ वस्तुओं का दहेज दिया; यावत् आठ करोड़ हिरण्य (चांदी), आठ करोड़ सुवर्ण, आदि गाथाओं के अनुसार समझ लेना चाहिए[1] यावत् आठ-आठ प्रेक्षणकारिणी (नाटक करने वाली) अथवा पेषणकारिणी (पीसने वाली) तथा और भी विपुल धन कनक रत्न मणि मोती शंख मूंगा रक्तरत्न (लाल) आदि उत्तम सारभूत द्रव्य दिया। जो सात पीढ़ी तक दान देने के लिए, उपभोग करने के लिए और बँटवारा करने के लिए पर्याप्त था।

तत्पश्चात् उस जाली कुमार ने प्रत्येक पत्नी को एक-एक करोड़ हिरण्य दिया, एक-एक करोड़ सुवर्ण दिया यावत् एक-एक प्रेक्षणकारिणी या पेषणकारिणी दी। इसके अतिरिक्त अन्य विपुल धन कनक आदि दिया, जो यावत् दान देने, भोगोपभोग करने और बँटवारा करने के लिए सात पीढ़ियों तक पर्याप्त था।

तत्पश्चात् जाली कुमार श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर रहा हुआ, मानो मृदंगों के मुख फूट रहे हों, इस प्रकार उत्तम स्त्रियों द्वारा किये हुए बत्तीसबद्ध नाटकों द्वारा गायन किया जाता हुआ तथा क्रीड़ा करता हुआ मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध की विपुलता वाले मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगता हुआ रहने लगा।

४ — सामी समोसढे। सेणिओ निग्गओ। जहा मेहो तहा जाली वि निग्गओ। तहेव निक्खंतो जहा मेहो। एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ।

गुणरयणं तवोकम्मं जहा खंदगस्स। एवं जा चेव खंदगस्स वत्तव्वया, सा चेव चिंतणा, आपुच्छणा। थेरेहिं सद्धिं विउलं तहेव दुरूहइ। नवरं सोलस वासाइं सामण्ण-परियागं पाउणित्ता कालमासे कालं

---

१. देखिए इसी समिति द्वारा प्रकाशित अन्तगड पृ. २७ तथा प्रस्तुत सूत्र पृ. १९.

किच्चा उड्ढं चन्दिमसोहम्मीसाण जाव ["सणंकुमार-माहिंद-बंभ-लंतग-महासुक्क-सहस्साराणय-पाणयारणच्चुए कप्पे नवगेवेज्जयविमाणपत्थडे उड्ढं दूरं वीईवइत्ता"] विजय-विमाणे देवत्ताए उववण्णे।

तए णं थेरा भगवंता जालिं अणगारं कालगयं जाणित्ता परिणिव्वाणवत्तियं काउस्सग्गं करेंति, करित्ता पत्तचीवराइं गेण्हंति। तहेव उत्तरंति जाव [जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसइत्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी जाली नामं अणगारे पगइभद्दए पगइविणीए पगइउवसंते पगइपयणुकोह-माण-माया-लोभे मिउमद्दवसंपन्ने अल्लीणे भद्दए विणीए। से णं देवाणुप्पिएहि अब्भणुण्णाए समाणे सयमेव पंच महव्वयाणि आरोवित्ता, समणा य समणीओ य खामेत्ता, अम्हेहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं तं चेव निरवसेसं जाव आणुपुव्वीए कालगए,] इमे य से आयारभंडए।

"भंते"! त्ति भगवं गोयमे जाव ["समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता"] एवं वयासी—

भगवान् महावीर राजगृह नगरी में पधारे। राजा श्रेणिक यह जानकर भगवान् के दर्शन करने के लिए चला। जाली कुमार ने भी मेघ कुमार की तरह भगवान् के दर्शन करने के लिए प्रस्थान किया। दर्शन करने के पश्चात् मेघ कुमार की तरह जाली कुमार ने भी माता-पिता की अनुमति लेकर प्रव्रज्या स्वीकार कर ली। स्थविरों की सेवा में रह कर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया।

उसने स्कन्दक मुनि की तरह गुणरत्नसंवत्सर नामक तप किया। इस प्रकार चिन्तना तथा आपृच्छना के संबंध में जो वक्तव्यता (वर्णन) भगवतीसूत्र में है, वही वक्तव्यता जाली कुमार के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए। वह स्थविरों के साथ विपुलगिरि पर गया। विशेष यह है कि सोलह वर्षों तक जाली कुमार ने श्रमण पर्याय का पालन किया। आयुष्य के अन्त में मरण प्राप्त करके वह ऊर्ध्वगमन करके चन्द्र सौधर्म ईशान (यावत् सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्मलोक लान्तक महाशुक्र सहस्रार आनत प्राणत आरण और अच्युत कल्पों को और नवग्रैवेयक विमानों को लांघकर) विजय नामक अनुत्तर विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ।

उस समय भगवन्त स्थविरों ने जाली अनगार को दिवंगत जानकर उनका परिनिर्वाणनिमित्तक कायोत्सर्ग किया। इसके पश्चात् उन्होंने (स्थविरों ने) जाली अनगार के पात्र एवं चीवरों को ग्रहण किया और फिर विपुलगिरि से नीचे उतर आये। (यावत् उतरकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजे हुए थे वहाँ आये। भगवान् को वन्दना-नमस्कार करके उन स्थविर भगवन्तों ने इस प्रकार कहा — भगवन् ! आपके शिष्य जाली अनगार, जो कि प्रकृति से भद्र, विनयी, शान्त, अल्प क्रोध-मान-माया-लोभवाले, कोमलता और नम्रता के गुणों से युक्त, इन्द्रियों को वश में रखने वाले, भद्र और विनीत थे, वे आपकी आज्ञा लेकर स्वयमेव पाँच महाव्रतों का आरोपण करके साधु-साध्वियों को खमा कर हमारे साथ विपुल पर्वत पर गये थे यावत् वे संथारा करके कालधर्म को प्राप्त हो गये हैं।) ये उनके उपकरण (वस्त्र, पात्र) हैं।

इसके बाद गौतमस्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा —

५ — "एवं खलु देवाणुप्पियाणं अन्तेवासी जाली नामं अणगारे पगइभद्दए। से णं जाली अणगारे

कालगए कहिं गए, कहिं उववण्णे ?''

एवं खलु गोयमा ! ममं अन्तेवासी तहेव जहा खंदयस्स जाव [''अब्भणुण्णाए समाणे सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहेत्ता, तं चेव सव्वं अवसेसियं नेयव्वं, जाव जाली अणगारे''] कालगए उड्ढं चंदिम जाव [सूर-गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं-बहूइं जोयणाइं, बहूइं जोयणसयाइं, बहूइं जोयणसहस्साइं, बहूइं जोयणसयसहस्साइं, बहूइं जोयणकोडीओ, बहूइं जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता सोहम्मीसाण-सणंकुमारमाहिंदबंभलंतगमहासुक्कसहस्साराणयपाणयारणच्चुए तिन्नि य अट्ठारसुत्तरे गेवेज्जविमाणावाससए वीईवइत्ता] विजए महाविमाणे देवत्ताए उववण्णे।

''जालिस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?''

''गोयमा ! बत्तीसं सागरोपमाइं ठिई पण्णत्ता।''

''से णं भंते ! ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ ?''

''गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।''

निक्षेप

''एवं खलु जम्बू समणेणं जाव संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।''

गौतम स्वामी ने पूछा — ''भन्ते ! आपका अन्तेवासी जाली अनगार जो प्रकृति से भद्र था, वह अपना आयुष्य पूर्ण करके कहाँ गया है ? और कहाँ उत्पन्न हुआ है ?''

भगवान् ने उत्तर दिया — गौतम ! मेरा अन्तेवासी जाली अनगार, इत्यादि कथन स्कंदक के समान जानना, यावत् मेरी अनुमति लेकर, स्वयमेव पांच महाव्रतों का आरोपण करके यावत् संलेखना-संथारा करके, समाधि को प्राप्त होकर काल के समय में काल करके ऊपर चन्द्र,सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारा रूप ज्योतिषचक्र से बहुत योजन, बहुत सैकड़ों योजन, बहुत हजारों योजन, बहुत लाखों योजन, बहुत करोड़ों योजन और बहुत कोडाकोडी योजन लांघकर, ऊपर जाकर सौधर्म ईशान सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्मलोक लान्तक महाशुक्र सहस्त्रार आनत प्राणत आरण और अच्युत देवलोकों को तथा तीन सौ अठारह नवग्रैवेयक विमानावासों को लांघ कर, विजयनामक महाविमान में देव के रूप में उत्पन्न हुआ है।

प्रश्न — ''भन्ते ! जालीदेव की वहाँ काल-स्थिति (आयुमर्यादा) कितनी है ?''

उत्तर — ''गौतम ! उसकी कालस्थिति बत्तीस सागरोपम की है।''

प्रश्न — ''भन्ते ! उस देवलोक से आयु-क्षय होने पर, भव-क्षय होने पर और स्थिति-क्षय होने पर वह जालीदेव कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?''

उत्तर — ''गौतम ! वहाँ से च्यवन कर वह महाविदेह वास से सिद्धि प्राप्त करेगा।''

निक्षेप

जम्बू ! इस प्रकार श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है।

विवेचन — यहाँ जाली कुमार का वर्णन प्रतिपादित किया गया है। वह वर्णन यहाँ संक्षेप में किया गया है, क्योंकि इस सूत्र में कथित विषय 'ज्ञातासूत्र' के प्रथम अध्ययन के — जिसमें मेघ कुमार के विषय में कहा गया है— विषय के समान ही है। अर्थात् 'ज्ञातासूत्र' के प्रथम अध्ययन में जिस प्रकार मेघ कुमार के विषय में प्रतिपादन किया गया है, उसी प्रकार इस सूत्र के प्रथम अध्ययन में जाली कुमार के विषय में भी प्रतिपादन समझ लेना चाहिए।

यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि — मेघ कुमार जाली अनगार के समान अनुत्तर विमान में ही उत्पन्न हुआ था तथापि मेघ कुमार का वर्णन अनुत्तरौपपातिकसूत्र में नहीं है और ज्ञातासूत्र में है, ऐसा क्यों ? उत्तर यह है कि मेघ कुमार का वर्णन छठे अंग में इसलिए किया गया है कि उसमें धर्मयुक्त पुरुषों की शिक्षाप्रद जीवन-घटनाओं का वर्णन है। मेघ कुमार के जीवन में कितनी ही ऐसी घटनाएँ वर्णन की गई हैं, जिनके पढ़ने से प्रत्येक व्यक्ति को अत्यन्त लाभ हो सकता है। किन्तु अनुत्तरौपपातिकसूत्र में केवल सम्यक्चारित्र पालन करने का फल बताया गया है। अतः मेघकुमार के चरित्र में विशेषता दिखाने के लिए उसका चरित्र नवें अङ्ग में न देकर छठे ही अङ्ग में दे दिया गया है।

२-१० अध्ययन

मयाली आदि कुमार

६ — **एवं सेसाणं वि नवण्हं भाणियव्वं। नवरं सत्त धारिणिसुआ। वेहल्लवेहायसा चेल्लणाए। अभओ नन्दाए।**

आइल्लाणं पंचण्हं सोलस वासाइं सामण्णपरियाओ। तिण्हं बारस-बारस वासाइं। दोण्हं पंच वासाइं।

आइल्लाणं पंचण्हं आणुपुव्वीए उववायो विजए वेजयंते जयंते अपराजिए सव्वट्ठसिद्धे।

दीहदंते सव्वट्ठसिद्धे। उक्कमेणं सेसा। अभओ विजए। सेसं जहा पढमे।

अभयस्स नाणत्तं, रायगिहे नयरे, सेणिए राया, नंदा देवी, सेसं तहेव।

"एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव[१] संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।"

शेष नौ अध्ययनों का वर्णन भी इसी प्रकार का है। विशेषता इतनी है कि धारिणी रानी के सात पुत्र हैं। वेहल्ल और वेहायस चेलना के पुत्र हैं। अभय नन्दा का पुत्र है।

आदि के पाँच कुमारों का श्रमण-पर्याय सोलह-सोलह वर्ष का है, तीन का श्रमण-पर्याय बारह वर्ष का है, तथा दो का श्रमण-पर्याय पाँच वर्ष का है।

आदि के पाँच अनगारों का उपपात-जन्म अनुक्रम से विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध विमान में हुआ है।

---

१. देखिए सू. १ पृ. १.

दीर्घदन्त सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न हुआ। शेष उत्क्रम से अपराजित आदि में उत्पन्न हुए तथा अभय विजय विमान में उत्पन्न हुआ। शेष वर्णन प्रथम अध्ययन के समान समझ लेना चाहिए।

अभय की विशेषता यह है कि राजगृह नगर, पिता राजा श्रेणिक और माता नन्दादेवी है। शेष वर्णन उक्त प्रकार से ही है।

''जम्बू ! इस प्रकार श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के प्रथम वर्ग का यह अर्थ कहा है।''

विवेचन — इस सूत्र में प्रथम वर्ग के शेष नौ अध्ययनों का वर्णन किया गया है। इनका विषय भी प्रायः पहले अध्ययन के साथ मिलता-जुलता है। विशेषता केवल इतनी है कि इनमें से सात तो धारिणी देवी के पुत्र थे और वेहल्ल कुमार और वेहायस कुमार चेलणा देवी के तथा अभय कुमार नन्दा देवी के उदर से उत्पन्न हुआ था। पहले के पाँचों ने सोलह वर्ष संयम-पर्याय का पालन किया था, तीन ने बारह वर्ष तक और शेष दो ने पाँच वर्ष तक। पहले पाँच अनुक्रम से पाँच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए और पिछले उत्क्रम से पाँच अनुत्तर विमानों में। यह इन दश मुनियों के उत्कट संयम-पालन का फल है कि वे एकावतारी होकर उक्त विमानों में उत्पन्न हुए। सिद्ध यह हुआ कि सम्यक्चारित्र का पालन करने का सदैव उत्तम फल होता है। उस फल का ही यहाँ सुचारु-रूप से वर्णन किया गया है। जो भी व्यक्ति सम्यक्चारित्र का आराधन करेगा वह शुभ फल से वञ्चित नहीं रह सकता। अतः सम्यक्चारित्र प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपादेय है।

॥ प्रथम वर्ग समाप्त ॥

दोच्चो वग्गो

१-१३ अध्ययन

उत्क्षेप

जइ णं भंते ! समणेणं जाव[1] संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं समणेणं जाव[2] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव[3] संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं दोच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा —

दीहसेणं महासेणं लट्ठदंते य गूढदंते य सुद्धदंते य।
हल्ले दुमे दुमसेणे महादुमसेणे य आहिए ॥
सीहे य सीहसेणे य महासीहसेणे य आहिए।
पुण्णसेणे य बोधव्वे तेरसमे होइ अज्झयणे ॥

"जइ णं भंते ! समणेणं जाव[4] संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं दोच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स समणेणं जाव[5] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?"

दीर्घसेन आदि

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। धारिणी देवी। सीहो सुमिणे। जहा जाली तहा जम्मं, बालत्तणं, कलाओ। नवरं दीहसेणे कुमारे।

सच्चेव[6] वत्तव्वया जहा जालिस्स जाव अंतं काहिए।

एवं तेरस वि रायगिहे। सेणिओ पिया। धारिणी माया। तेरसण्हं वि सोलस वासा परियाओ। आणुपुव्वीए विजए दोण्णि, वेजयंते दोण्णि, जयंते दोण्णि, अपराजिए दोण्णि, सेसा महादुमसेणमाई पंच सव्वट्ठसिद्धे।

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव[7] अणुत्तरोववाइयदसाणं दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

मासियाए संलेहणाए दोसु वि वग्गेसु त्ति।

जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया — भन्ते ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के प्रथम वर्ग का यह अर्थ कहा है, तो भन्ते ! अनुत्तरौपपातिकदशा के द्वितीय वर्ग का श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?

सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं — जम्बू ! श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के

१-५. देखिए वर्ग १, सूत्र १.

६. सव्वेव — एम.सी. मोदी

७. देखिए वर्ग १, सूत्र १.

द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं —

१. दीर्घसेन, २. महासेन, ३. लष्टदन्त (लट्ठदन्त), ४. गूढदन्त, ५. शुद्धदन्त, ६. हल्ल, ७. द्रुम, ८. द्रुमसेन, ९. महाद्रुमसेन, १०. सिंह, ११. सिंहसेन, १२. महासिंहसेन, १३. पुण्यसेण (पुण्यसेन अथवा पूर्णसेन)।

भन्ते ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन कहे है, तो भन्ते ! द्वितीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?

दीर्घसेन आदि

जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था। गुणशीलक चैत्य था। वहाँ का राजा श्रेणिक था। धारिणी देवी रानी थी। उसने सिंह का स्वप्न देखा। जाली कुमार के सदृश जन्म, बाल्यकाल और कला-ग्रहण आदि जान लेना चाहिए। विशेष यह है कि कुमार का नाम दीर्घसेन था।

शेष समस्त वर्णन जाली कुमार के समान है। यावत् वह सब दुःखों का अन्त करेगा।

इस तरह तेरह ही राजकुमारों का नगर राजगृह था। पिता श्रेणिक था और माता धारिणी थी। तेरह ही कुमारों की दीक्षापर्याय सोलह वर्ष थी। अनुक्रम से वे दो[१] विजय में, दो[२] वैजयन्त में, दो[३] जयन्त में, दो[४] अपराजित में और शेष महाद्रुमसेन आदि पाँच सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए।

जम्बू ! इस प्रकार श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के द्वितीय वर्ग का यह अर्थ कहा है।

दोनों वर्गो में एक-एक मास की संलेखना समझनी चाहिए।

विवेचन — प्रथम वर्ग की समाप्ति के अनन्तर श्री जम्बूस्वामी ने श्री सुधर्मास्वामी से सविनय निवेदन किया— भगवन् ! मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् ने अनुत्तरौपपातिकदशा के द्वितीय वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? प्रश्न के उत्तर में सुधर्मास्वामी ने कहा — हे जम्बू ! मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् ने अनुत्तरौपपातिकदशा के द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन प्रतिपादन किये हैं। तेरह ही राजकुमार श्रेणिक राजा और धारिणी देवी के आत्मज अर्थात् पुत्र थे। ये तेरह महर्षि सोलह-सोलह वर्ष तक संयम का पालन कर अनुत्तरविमानों में उत्पन्न हुए।

यहाँ जो विवरण लिया गया है वह संक्षिप्त में लिया गया है, क्योंकि 'ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र' के मेघकुमार के समान ही यहाँ का वर्णन है। इसके विषय में प्रथम अध्ययन में विवरण आ चुका है। अतः विशेष जानने की इच्छा वालों को उक्त सूत्र के ही प्रथम अध्ययन का स्वाध्याय करना चाहिए।

यहाँ एक बात विशेष ज्ञातव्य है कि इस सूत्र के दोनों वर्गो में उल्लिखित तेईस मुनियों ने एक-एक मास का पादपोपगमन अनशन किया था और तदनन्तर वे उक्त अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए।

---

१. दीर्घसेन और महासेन
२. लष्टदन्त और गूढदन्त
३. शुद्धदन्त और हल्ल
४. द्रुम और द्रुमसेन

इस वर्ग में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक सम्यक्चारित्राराधना का शुभ फल दिखाया गया है। यह बात सर्व-सिद्ध है कि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान-पूर्वक आराधना की हुई सम्यक् क्रिया ही कर्मो के क्षय करने में समर्थ हो सकती है।

विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में कतिपय पाठभेद देखने में आते हैं, तथापि ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र का प्रमाण होने से वे यहाँ नहीं दिखाये गये हैं। जिज्ञासुओं को वहीं से जान लेना चाहिए।

॥ द्वितीय वर्ग समाप्त ॥

तच्चो वग्गो

प्रथम अध्ययन

धन्य

उत्क्षेप

१— जइ णं भंते ! समणेणं जाव[1] संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, तच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं समणेणं जाव[2] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव[3] संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं तच्चस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा —

धण्णे य सुणक्खत्ते य इसिदासे अ आहिए ।
पेल्लए रामपुत्ते च चंदिमा पिट्ठिमाइ य ॥
पेढालपुत्ते अणगारे नवमे पोट्ठिले वि य ।
वेहल्ले दसमे पुत्ते इमे य दस आहिया ॥

जइ णं भंते ! समणेणं[4] जाव संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं तच्चस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव[5] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

जम्बूस्वामी ने श्री सुधर्मास्वामी के समक्ष जिज्ञासा प्रस्तुत की — भन्ते ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के द्वितीय वर्ग का यह अर्थ कहा है, तो भन्ते ! श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के तृतीय वर्ग का क्या अर्थ कहा है ?

सुधर्मास्वामी ने समाधान किया —जम्बू ! श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के तृतीय वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार है —

१. धन्यकुमार, २. सुनक्षत्र, ३. ऋषिदास, ४. पेल्लक, ५. रामपुत्र, ६. चन्द्रिक, ७. पृष्टिमातृक, ८. पेढालपुत्र, ९. पोष्टिल्ल, १०. वेहल्ल।

जम्बूस्वामी ने फिर पूछा — भन्ते ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के तृतीय वर्ग के दश अध्ययन कहे है, तो भन्ते ! श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरौपपातिक-दशा के तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

धन्यकुमार

२ — एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं कायंदी नामं नयरी होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा। सहसंबवणे उज्जाणे सव्वउउ जाव [पुप्फ-फल-समिद्धे] जियसत्तू राया।

१-२-३-४-५ — सूत्र २, पृ. १

तत्थ णं कायंदीए नयरीए भद्दा नामं सत्थवाही परिवसइ अड्ढा जाव [दित्ता वित्ता वित्थिण-विउल-भवण-सयणासण-जाणवाहणा बहुधण-जायरूव-रयया आओग-पओग-संपउत्ता विच्छड्डिय-पउर-भत्तपाणा बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलग-प्पभूया बहुजणस्स अपरिभूया]।

तीसे णं भद्दाए सत्थवाहीए पुत्ते धण्णे नामं दारए होत्था, अहीण जाव[1] [पंचिंदियसरीरे लक्खण-वंजण-गुणोववेए माणुम्माणपमाणपडिपुण्णसुजायसव्वंगसुंदरंगे ससिसोमाकारे कंते पियदंसणे सुरूवे] पंचधाईपरिग्गहिए। तं जहा— खीरधाईए जहा महब्बलो जाव बावत्तरिं कलाओ अहीए, तहा धण्णं कुमारं अम्मापियरो सातिरेगट्ठवासजायगं चेव गब्भट्ठमे वासे सोहणंसि तिहिकरण-नक्खत्त मुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेन्ति। तते णं से कलायरिए धण्णं कुमारं लेहाइयाओ गणितप्पहाणाओ सउणरुतपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ अ अत्थओ अ करणओ य सेहावेति, सिक्खावेति।

तं जहा— (१) लेहं (२) गणियं (३) रूवं (४) नट्टं (५) गीयं (६) वाइयं (७) सरगयं (८) पोक्खरगयं (९) समतालं (१०) जूयं (११) जणवायं (१२) पासयं (१३) अट्ठावयं (१४) पोरेकच्चं (१५) दगमट्टियं (१६) अन्नविहिं (१७) पाणविहिं (१८) वत्थविहिं (१९) विलेवणविहिं (२०) सयणविहिं (२१) अज्जं (२२) पहेलियं (२३) मागहियं (२४) गाहं (२५) गीइयं (२६) सिलोयं (२७) हिरण्णजुत्तिं (२८) सुवन्नजुत्तिं (२९) चुन्नजुत्तिं (३०) आभरणविहिं (३१) तरुणीपडिकम्मं (३२) इत्थिलक्खणं (३३) पुरिसलक्खणं (३४) हयलक्खणं (३५) गयलक्खणं (३६) गोणलक्खणं (३७) कुक्कुडलक्खणं (३८) छत्तलक्खणं (३९) दंडलक्खणं (४०) असिलक्खणं (४१) मणिलक्खणं (४२) कागणिलक्खणं (४३) वत्थुविज्जं (४४) खंधारमाणं (४५) नगरमाणं (४६) वूहं (४७) पडिवूहं (४८) चारं (४९) पडिचारं (५०) चक्कवूहं (५१) गरुलवूहं (५२) सगडवूहं (५३) जुद्धं (५४) निजुद्धं (५५) जुद्धातिजुद्धं (५६) अट्ठिजुद्धं (५७) मुट्ठिजुद्धं (५८) बाहुजुद्धं (५९) लयाजुद्धं (६०) ईसत्थं (६१) छरुप्पवायं (६२) धणुव्वेयं (६३) हिरन्नपागं (६४) सुवन्नपागं (६५) सुत्तखेडं (६६) वट्टखेडं (६७) नालियाखेडं (६८) पत्तच्छेज्जं (६९) कडगच्छेज्जं (७०) सजीवं (७१) निज्जीवं (७२) सउणरुअमिति।

तए णं से धण्णे कुमारे बावत्तरिकलापंडिए णवंगसुत्तपडिबोहिए अट्ठारसविहिप्पगारदेसीभासा-विसारए गीइरई गंधव्वनट्टकुसले हयजोही गयजोही बाहुजोही बाहुप्पमद्दी अलं भोगसमत्थे साहसिए वियालचारी जाए यावि होत्था।

सुधर्मास्वामी ने उत्तर दिया — जम्बू ! इस प्रकार उस काल और उस समय में काकन्दी नामक एक नगरी थी। वह नगरी ऋद्ध स्तिमित (स्थिर) और समृद्ध थी। वहाँ सहस्राम्रवन नाम का एक उद्यान था, जिसमें समस्त ऋतुओं के फल और फूल सदा रहते थे। उस समय वहाँ जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था।

उस काकन्दी नगरी में भद्रा नामक एक सार्थवाही रहती थी। वह धनी तेजस्वी विस्तृत और विपुल भवनों, शय्याओं, आसनों, यानों और वाहनों वाली थी तथा सोना चाँदी आदि धन की बहुलता से युक्त थी। अधमर्णों (ऋण

---

१. देखिए वर्ग १, सूत्र १.

लेने वालों) को वह लेन-देन करने में कुशल थी। उसके यहाँ भोजन करने के अनन्तर भी बहुत-सा अन्न-पानी बाकी बच जाता था। उसके घर में बहुत से दास-दासी आदि सेवक और गाय-भैंस और बकरी आदि पशु थे। वह बहुतों से भी पराभव को प्राप्त नहीं होती थी और जनता में सम्माननीय थी।

उस भद्रा सार्थवाही के धन्यकुमार नामका एक पुत्र था, जो अहीन एवं परिपूर्ण पाँचों इन्द्रियों से युक्त शरीरवाला था। अर्थात् उसका शरीर (लक्षण की अपेक्षा) खामियों से रहित और (स्वरूप की अपेक्षा) परिपूर्ण था। वह स्वस्तिक आदि लक्षण, तिल मष आदि व्यंजन और गुणों से युक्त था। माप, भार और आकार-विस्तार से परिपूर्ण और सुन्दर बने हुए समस्त अंगों वाला था। उसका आकार चन्द्र के समान सौम्य और दर्शन कान्त और प्रिय था। इस प्रकार उसका रूप बहुत सुन्दर था।

महाबल कुमार की तरह क्षीरधात्री (दूध पिलाने वाली धाय) आदि पांच धायें उसका पालन-पोषण आदि करती थीं तथा जिस प्रकार महाबल ने बहत्तर कलाओं का अध्ययन किया उसी प्रकार धन्यकुमार को माता-पिता ने शुभ तिथि, करण और मुहूर्त में कलाचार्य के पास भेजा। तत्पश्चात् कलाचार्य ने धन्य (धन्ना) कुमार को गणित जिन में प्रधान है, ऐसी लेख आदि शकुनिरुत (पक्षियों के शब्द) तक की बहत्तर कलाएँ सूत्र से, अर्थ से और प्रयोग से सिद्ध करवाई तथा सिखलाई।

वे कलाएँ इस प्रकार हैं — (१) लेखन (२) गणित (३) रूप बदलना (४) नाटक (५) गायन (६) वाद्य बजाना (७) स्वर जानना (८) वाद्य सुधारना (९) समान ताल जानना (१०) जुआ खेलना (११) लोगों के साथ वादविवाद करना (१२) पासों से खेलना (१३) चौपड़ खेलना (१४) नगर की रक्षा करना (१५) जल और मिट्टी के संयोग से वस्तु का निर्माण करना (१६) धान्य निपजाना (१७) नया पानी उत्पन्न करना, पानी को संस्कार करके शुद्ध करना एवं उष्ण करना (१८) नवीन वस्त्र बनाना, रंगना, सीना और पहनना (१९) विलेपन की वस्तु को पहचानना, तैयार करना, लेपन करना आदि (२०) शय्या बनाना, शयन करने की विधि जानना आदि (२१) आर्या-छन्द को पहचानना और बनाना (२२) पहेलियाँ बनाना और बूझना (२३) मागधिका अर्थात् मगध देश की भाषा में गाथा आदि बनाना (२४) प्राकृत भाषा में गाथा आदि बनाना (२५) गीति छन्द बनाना (२६) श्लोक (अनुष्टुप् छन्द) बनाना (२७) सुवर्ण बनाना, उसके आभूषण बनाना, पहनना आदि (२८) नई चाँदी बनाना, उसके आभूषण बनाना, पहनना आदि (२९) चूर्ण-गुलाल, अबीर आदि बनाना और उसका उपयोग करना (३०) गहने घड़ना पहनना आदि (३१) तरुणी की सेवा करना, प्रसाधन करना (३२) स्त्री के लक्षण जानना (३३) पुरुष के लक्षण जानना (३४) अश्व के लक्षण जानना (३५) हाथी के लक्षण जानना (३६) गाय, बैल के लक्षण जानना (३७) मुर्गी के लक्षण जानना (३८) छत्र-लक्षण जानना (३९) दंड-लक्षण जानना (४०) खड्ग-लक्षण जानना (४१) मणि के लक्षण जानना (४२) काकणीरत्न के लक्षण जानना (४३) वास्तुविद्या — मकान-दुकान आदि इमारतों की विद्या (४४) सेना के पड़ाव का प्रमाण आदि जानना (४५) नया नगर बसाने आदि की कला (४६) व्यूह— मोर्चा बनाना (४७) विरोधी के व्यूह के सामने अपनी सेना का मोर्चा रचना (४८) सैन्य संचालन करना (४९) प्रतिचार— शत्रुसेना के समक्ष अपनी सेना को चलाना (५०) चक्रव्यूह— चाक के आकार में मोर्चा बनाना (५१) गरुड के आकार का व्यूह बनाना (५२) शकटव्यूह रचना (५३) सामान्य युद्ध करना (५४) विशेष युद्ध करना (५५) अत्यंत विशेष युद्ध करना (५६) अट्ठि (यष्टि या अस्थि) से युद्ध करना (५७) मुष्टियुद्ध करना (५८) बाहुयुद्ध करना

(५९) लतायुद्ध करना (६०) बहुत को थोड़ा और थोड़े को बहुत दिखलाना (६१) खड्ग की मूठ आदि बनाना (६२) धनुष-बाण संबंधी कौशल होना (६३) चांदी का पाक बनाना (६४) सोने का पाक बनाना (६५) सूत्र का छेदन करना (६६) खेत जोतना (६७) कमल के नाल का छेदन करना (६८) पत्रछेदन करना (६९) कड़ा कुंडल आदि का छेदन करना (७०) मृत-मूर्च्छित को जीवित करना (७१) जीवित को मृत (मृततुल्य) करना और (७२) काक घूक आदि पक्षियों की बोली पहचानना।

इस प्रकार धन्यकुमार बहत्तर कलाओं में पंडित हो गया। उसके नौ अंग — दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, जिह्वा, त्वचा और मन बाल्यावस्था के कारण जो सोये-से थे — अव्यक्त चेतना वाले थे, वे जागृत हो गये। वह अठारह प्रकार की देशी भाषाओं में कुशल हो गया। वह अश्वयुद्ध, गजयुद्ध, रथयुद्ध और बाहुयुद्ध करने वाला बन गया। अपनी बाहुओं से विपक्षी का मर्दन करने में समर्थ हो गया। भोग भोगने का सामर्थ्य उसमें आ गया। साहसी होने के कारण विकालचारी अर्थात् आधी रात में भी चल पड़ने वाला बन गया।

विवेचन — द्वितीय वर्ग की समाप्ति होने पर जम्बूस्वामी ने सुधर्मास्वामी से पुनः प्रश्न किया — भगवन्! द्वितीय वर्ग का अर्थ मैंने श्रवण किया। अब मुझ पर असीम कृपा करते हुए तृतीय वर्ग का अर्थ भी सुनाइए, जिससे मुझे उसका भी बोध हो जाय। इसके उत्तर में श्री सुधर्मास्वामी ने प्रतिपादन किया — हे जम्बू ! मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने तृतीय वर्ग के दस अध्ययन प्रतिपादन किये हैं। उनमें से प्रथम अध्ययन धन्यकुमार के जीवन-वृत्तान्त के विषय में है।

इस अध्ययन के पढ़ने से हमें उस समय की स्त्रीजाति की उन्नत अवस्था का पता लगता है। उस समय की स्त्रियाँ वर्तमान युग के समान पुरुष पर निर्भर न रहती हुई, स्वयं उनकी बराबरी में व्यापार आदि कार्य करती थीं। उन्हें व्यापार आदि के विषय में सब तरह का पूरा ज्ञान होता था। यहाँ भद्रा नाम की सार्थवाही व्यापार का काम स्वयं करती थी और विशेषता यह कि वह किसी से पराभूत नहीं होती थी — दबती नहीं थी। यह उल्लेख उन्नति के शिखर पर पहुँची हुई स्त्रीजाति का चित्र हमारी आँखों के सामने खींचता है। उन्होंने पुरुषों के समान ही मोक्षगमन भी किया।

३ — तए णं सा भद्दा सत्थवाही धण्णं दारयं उम्मुक्कबालभावं जाव [विण्णायपरिणयमित्तं जोव्वणगमणुपत्तं बावत्तरिकलापंडियं णवंगसुत्तपडिबोहयं अट्ठारसविहदेसिप्पगारभासाविसारयं गीयरइं गंधव्व-णट्ट-कुसलं सिंगारागारचारुवेसं संगयगय-हसिय-भणिय-चिट्ठिय-विलाव-निउणजुत्तोवयार-कुसलं हयजोहिं गयजोहिं रहजोहिं बाहुजोहिं बाहुप्पमद्दिं] अलं भोगसमत्थं यावि जाणित्ता बत्तीसं पासायवडिंसए कारेइ, अब्भुग्गयमूसिए जाव [पहसिए विव मणिकणगरयणभत्तिचित्ते, वाउद्धूत-विजयवेजयंतीपडागाछत्ता-इच्छत्तकलिए, तुंगे, गगणतलमभिलंघमाणसिहरे, जालंतररयणपंजरुम्मिल्लियव्व मणिकणगथूभियाए, वियसियसयपत्तपुंडरीए तिलयरयणद्धचंदच्चिए नानामणिमयदामालंकिए, अंतो बहिं च सण्हे तवणिज्जरुइलबालुयापत्थडे, सुहफासे सस्सिरीयरूवे पासादीए जाव पडिरूवे]।

तेसिं मज्झे एगं भवणं अणेगखंभसयसंनिविट्ठं जाव लीलट्ठियसालभंजियागे अब्भुग्गयसुकयव-इरवेइयातोरणवररइयसालभंजियासुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठसंठितपसत्थवेरुलियखंभनाणामणिकणगरयण-खचितउज्जलं बहुसमसुविभत्तनिचियरमणिज्जभूमिभागं ईहामिय, जाव भत्तिचित्तं खंभुग्गयवइर वेइया-

परिगयाभिरामं विज्जाहरजमलजुयलजुत्तं पिव अच्चीसहस्स मालणीयं रूवगसहस्सकलियं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोयणलेसं सुहफासं सस्सिरीयरूवं कंचणमणिरयणथूभियागं नाणाविहपंचवन्न-घंटापडागपरिमंडियग्गसिखरं धवलमरीचिकवयं विणिम्मुयंतं लाउल्लोइयमहियं जाव गंधवट्टिभूयं पासादीयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं]।

(तए णं भद्दा सत्थवाही) बत्तीसाए इब्भवरकण्णगाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेइ। बत्तीसओ दाओ जाव [बत्तीसं हिरण्णकोडीओ, बत्तीसं सुवण्णकोडीणो, बत्तीसं मउडे मउडप्पवरे, बत्तीसं कुंडलजुए कुंडलजुयलप्पवरे, बत्तीसं हारे हारप्पवरे, बत्तीसं अद्धहारे अद्धहारप्पवरे, बत्तीसं एगावलीओ एगावलिप्पवराओ, एवं मुत्तावलीओ, एवं कणगावलीओ, एवं रयणावलीओ, बत्तीसं कडगजोए कडगजोयप्पवरे, एवं तुडियजोए, बत्तीसं खोमजुयलाइं खोमजुयलप्पवराइं, एवं पडगजुयलाइं, एवं पट्टजुयलाइं, एवं दुगुल्लजुयलाइं, बत्तीसं सिरीओ, बत्तीसं हिरीओ, एवं धिईओ, कित्तीओ, बुद्धीओ, लच्छीओ, बत्तीसं णंदाइं, बत्तीसं भद्दाइं बत्तीसं तले तलप्पवरे, सव्वरयणामए, णियगवरभवणकेऊ, बत्तीसं झए झयप्पवरे, बत्तीसं वये वयप्पवरे दसगोसाहस्सिएणं वएणं, बत्तीसं णाडगाइं णाडगप्पवराइं बत्तीसबद्धेणं णाडएणं, बत्तीसं आसे आसप्पवरे, सव्वरयणामए, सिरिघरपडिरूवए, बत्तीसं हत्थी हत्थिप्पवरे, सव्वरयणामए सिरिघरपडिरूवए, बत्तीसं जाणाइं जाणप्पवराइं, बत्तीसं जुगाइं जुगप्पवराइं, एवं सिवियाओ, एवं संदमाणीओ, एवं गिल्लीओ थिल्लीओ, बत्तीसं वियडजाणाइं वियडजाणप्पवराइं, बत्तीसं रहे पारिजाणिए, बत्तीसं रहे संगामिए, बत्तीसं आसे आसप्पवरे, बत्तीसं हत्थी हत्थिपवरे, बत्तीसं गामे गामप्पवरे, दसकुलसाहस्सिएणं गामेणं, बत्तीसं दासे दासप्पवरे, एवं चेव दासीओ, एवं किंकरे, एवं कंचुइज्जे, एवं वरिसधरे, एवं महत्तरए, बत्तीसं सोवण्णिए ओलंबणदीवे, बत्तीसं रुप्पामए ओलंबणदीवे, बत्तीसं सुवण्णरुप्पामए ओलंबणदीवे, बत्तीसं सोवण्णिए उक्कंचणदीवे, बत्तीसं पंजरदीवे, एवं चेव तिण्णि वि, बत्तीसं सोवण्णिए थाले, बत्तीसं रुप्पमए थाले, बत्तीसं सुवण्णरुप्पमए थाले, बत्तीसं सोवण्णियाओ पत्तीओ ३ ×, बत्तीसं सोवण्णियाइं थासयाइं ३, बत्तीसं सोवण्णियाइं मल्लगाइं ३, बत्तीसं सोवण्णियाओ तलियाओ ३, बत्तीसं सोवण्णियाओ कावइआओ ३, बत्तीसं सोवण्णिए अवएडए ३, बत्तीसं सोवण्णियाओ अवयक्काओ ३, बत्तीसं सोवण्णिए पायपीढए ३, बत्तीसं सोवण्णियाओ भिसियाओ ३, बत्तीसं सोवण्णियाओ करोडियाओ ३, बत्तीसं सोवण्णिए पल्लंके ३, बत्तीसं सोवण्णियाओ पडिसेज्जाओ ३, बत्तीसं हंसासणाइं, बत्तीसं कोंचासणाइं, एवं गरुलासणाइं, उण्णयासणाइं, पणयासणाइं, दीहासणाइं, भद्दासणाइं, पक्खासणाइं, मगरासणाइं, बत्तीसं पउमासणाइं, बत्तीसं दिसासोवत्थियासणाइं, बत्तीसं तेल्लसमुग्गे, जहा रायप्पसेणइज्जे, जाव बत्तीसं सरिसवसमुग्गे, बत्तीसं खुज्जाओ, जहा उववाइए, जाव बत्तीसं पारिसीओ, छत्ते, बत्तीसं छत्तधारिणीओ चेडीओ, बत्तीसं चामराओ, बत्तीसं चामरधारिणीओ चेडीओ, बत्तीसं ताडियंटे, बत्तीसं तालियंटधारिणीओ चेडीओ, बत्तीसं करोडियाओ, बत्तीसं करोडियाधारिणीओ चेडीओ, बत्तीसं खीरधाईओ, जाव बत्तीसं अंकधाईओ, बत्तीसं अंगमद्दियाओ, बत्तीसं उम्मद्दियाओ, बत्तीसं ण्हावियाओ, बत्तीसं पसाहियाओ, बत्तीसं वण्णगपेसीओ, बत्तीसं चुण्णपेसीओ, बत्तीसं कोट्ठागारीओ, बत्तीसं दवकारीओ, बत्तीसं उवत्थाणियाओ, बत्तीसं णाडइज्जाओ, बत्तीसं कोडुंबियणीओ, बत्तीसं महाणसिणीओ, बत्तीसं भंडागारिणीओ, बत्तीसं अज्झाधारिणीओ, बत्तीसं पुप्फधारणीओ, बत्तीसं पाणिधारणीओ, बत्तीसं बलिकारीओ, बत्तीसं सेज्जाकारीओ, बत्तीसं अब्भितरियाओ

पडिहारीओ, बत्तीसं बाहिरियाओ पडिहारीओ, बत्तीसं मालाकारीओ, बत्तीसं पेसणकारीओ, अण्णं वा सुबहुं हिरण्णं वा सुवण्णं वा कंसं वा दूसं वा विउलधणकणग० जाव संतसारसावएज्जं, अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं, पकामं भोत्तुं, पकामं परिभाएउं।

तए णं से धन्ने कुमारे एगमेगाए भज्जाए एगमेगं हिरण्णकोडिं दलयइ, एगमेगं सुवण्णकोडिं दलयइ, एगमेगं मउडं मउडप्पवरं दलयइ, एवं तं चेव सव्वं जाव एगमेगं पेसणकारिं दलयइ, अण्णं वा सुबहुं हिरण्णं वा जाव परिभाएउं। तए णं से धन्ने कुमारे उप्पि पासाय] जाव[1] फुट्टंतेहि जाव[2] विहरइ।

अनन्तर धन्यकुमार को बाल-भाव से उन्मुक्त जानकर, यावत् विज्ञान जिसका शीघ्रता से परिपक्व अवस्था में पहुँच गया है, यौवनावस्थाशाली हुआ, ७२ कलाओं में विशेष रूप से निष्णात हुआ, जिसके नौ अंग (दो कान, दो नेत्र, दो नासिका छिद्र, एक जीभ, एक स्पर्शन एवं एक मन) व्यक्त-जागृत हो गए, अठारह प्रकार की भाषाओं में विशारद हुआ, गीत एवं रति में अनुरागयुक्त हुआ, गान्धर्व गान में एवं नाट्य क्रिया में पारङ्गत हुआ, तथा शृङ्गार के गृह की तरह सुन्दर वेष से युक्त हुआ, समुचित चेष्टा में — समुचित विलास में — नेत्रजनित विकार में, समुचित संलाप में एवं समुचित काकुभाषण में दक्ष हुआ, तथा — समुचित व्यवहारों में कुशल हुआ, अश्वयुद्ध करने में कुशल हुआ, गजयुद्ध करने में कुशल हुआ, रथयोधी हुआ, बाहुप्रयोधी हुआ, बाहुप्रमर्दी हुआ — बाहु से भी कठोर वस्तु को चूर-चूर करने में समर्थ हुआ तथा भोग में समर्थ हुआ, ऐसा जानकर भद्रा सार्थवाही ने बत्तीस सुन्दर प्रासाद बनवाए जो विशाल और उत्तुङ्ग थे।

[वे भवन अपनी उज्ज्वल कान्ति के समूह से हँसते हुए से प्रतीत होते थे। मणि, सुवर्ण और रत्नों की रचना से विचित्र थे। वायु से फहराती हुई और विजय को सूचित करने वाली वैजयन्ती — पताकाओं से तथा छत्रातिछत्रों (एक-दूसरे के ऊपर रहे हुए छत्रों) ये युक्त थे। वे इतने ऊँचे थे कि उनके शिखर आकाशतल को उल्लंघन करते थे। उनकी जालियों के मध्य में रत्नों के पंजर ऐसे प्रतीत होते थे, मानो उनके नेत्र हों। उनमें मणियों और कनक की थूभिकाएँ (स्तूपिकाएँ) बनी थीं। उनमें साक्षात् अथवा चित्रित किये हुए शतपत्र और पुण्डरीक कमल विकसित हो रहे थे। वे तिलक रत्नों एवं अर्द्ध चन्द्रों—एक प्रकार के सोपानों से युक्त थे, अथवा भित्तियों में चन्दन आदि के आलेख (हाथे) चर्चित थे। नाना प्रकार की मणिमय मालाओं से अलंकृत थे। भीतर और बाहर से चिकने थे। उनके आंगन में सुवर्ण की रुचिर बालुका बिछी थी। उनका स्पर्श सुखप्रद था। रूप बड़ा ही शोभन था। उन्हें देखते ही चित्त में प्रसन्नता होती थी यावत् वे महल प्रतिरूप थे—अत्यन्त मनोहर थे।

उन प्रासादों के मध्य में एक उत्तम भवन का निर्माण करवाया जो अनेक सैकड़ों स्तम्भों पर आधारित था। उसमें लीलायुक्त अनेक पुतलियाँ स्थापित की हुई थीं। उसमें ऊँची और सुनिर्मित वज्ररत्न की वेदिका थी और तोरण थे। मनोहर निर्मित पुतलियों सहित उत्तम, मोटे एवं प्रशस्त वैडूर्यरत्न के स्तम्भ थे—वह विविध प्रकार के मणियों सुवर्ण तथा रत्नों से खचित होने के कारण उज्ज्वल दिखाई देता था। उसका भूमिभाग बिल्कुल सम, विशाल, पक्का और रमणीय था। उस भवन में ईहामृग, वृषभ, तुरग, मनुष्य, मकर आदि के चित्र चित्रित किये हुए थे। स्तम्भों पर बनी वज्ररत्न की वेदिका से युक्त होने के कारण रमणीय दिखाई पड़ता था। समान श्रेणी में स्थित विद्याधरों के युगल यंत्र द्वारा चलते दीख पड़ते थे। वह भवन हजारों किरणों से व्याप्त और हजारों चित्रों से युक्त होने से देदीप्यमान और

१-२. अणुत्तरोववाइयदशा सूत्र ३.

अतीव देदीप्यमान था। उसे देखते ही दर्शक के नयन उसमें चिपक-से जाते थे। उसका स्पर्श सुखप्रद था और रूप शोभा-सम्पन्न था। उसमें सुवर्ण, मणि एवं रत्नों की स्तूपिकाएँ बनी हुई थीं। उसका प्रधान शिखर घंटाओं सहित नाना प्रकार की पाँच वर्णो की पताकाओं से सुशोभित था। वह चहुँ ओर देदीप्यमान किरणों के समूह को फैला रहा था। वह लिपा था, धुला था और चंदोवे से युक्त था यावत् वह भवन गंध की वत्ती जैसा जान पड़ता था। वह चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप था—अतीव मनोहर था।

इसके पश्चात् भद्रा सार्थवाही ने यावत् एक दिन में बत्तीस इभ्यवरों (श्रेष्ठिप्रवरों) की कन्याओं के साथ धन्यकुमार का पाणिग्रहण—विवाह सम्पन्न कराया। उनको बत्तीस-बत्तीस वस्तुएँ प्रदान कीं। यथा—[बत्तीस कोटि हिरण्य (चाँदी के सिक्के), बत्तीस कोटि सोनैये (सोने के सिक्के), बत्तीस श्रेष्ठ मुकुट, बत्तीस श्रेष्ठ कुण्डलयुगल, बत्तीस उत्तम हार, बत्तीस उत्तम अर्द्धहार, बत्तीस उत्तम एकसरा हार, बत्तीस मुक्तावली हार, बत्तीस कनकावली हार, बत्तीस रत्नावली हार, बत्तीस उत्तम कड़ों की जोड़ी, बत्तीस उत्तम त्रुटित (बाजूबन्द) की जोड़ी, उत्तम बत्तीस रेशमी वस्त्रयुगल, बत्तीस उत्तम सूती वस्त्रयुगल, बत्तीस टसर वस्त्रयुगल, बत्तीस पट्टयुगल, बत्तीस दुकुलयुगल, बत्तीस श्री, बत्तीस ह्री, बत्तीस धृति, बत्तीस कीर्ति, बत्तीस बुद्धि और बत्तीस लक्ष्मी देवियों की प्रतिमा, बत्तीस नन्द, बत्तीस भद्र, बत्तीस ताड़ वृक्ष, ये सब रत्नमय जानने चाहिए। अपने भवन के केतु—(चिह्नरूप) बत्तीस उत्तम ध्वज, दश हजार गायों के एक व्रज (गोकुल) के हिसाब से बत्तीस उत्तम गोकुल, बत्तीस मनुष्यों द्वारा किया जाने वाला एक नाटक होता है—ऐसे बत्तीस उत्तम नाटक, बत्तीस उत्तम घोड़े, ये सब रत्नमय जानना चाहिए। भाण्डागार समान बत्तीस रत्नमय उत्तमोत्तम हाथी, भाण्डागार श्रीधर समान सर्व रत्नमय बत्तीस उत्तम यान, बत्तीस उत्तम युग्य (एक प्रकार का वाहन), बत्तीस शिविकाएं, बत्तीस स्यन्दमानिकाएं, बत्तीस गिल्ली (हाथी की अम्बाड़ी), बत्तीस थिल्लि (घोड़े के पलाण-काठी), बत्तीस उत्तम विकट (खुले हुए) यान, बत्तीस पारियानिक (क्रीडा करने के) रथ, बत्तीस सांग्रामिक रथ, बत्तीस उत्तम अश्व, बत्तीस उत्तम हाथी, दस हजार कुल-परिवार जिसमें रहते हों ऐसे गाँव के हिसाब से बत्तीस गाँव, बत्तीस उत्तम दास, बत्तीस उत्तम दासियाँ, बत्तीस उत्तम किंकर, बत्तीस कंचुकी (द्वाररक्षक), बत्तीस वर्षधर (अन्तःपुर के रक्षक—खोजा), बत्तीस महत्तरक (अन्तःपुर के कार्य का विचार करने वाले), बत्तीस सोने के, बत्तीस चाँदी के, बत्तीस सोने-चाँदी के अवलम्बनदीपक (लटकने वाले दीपक—हण्डियाँ), बत्तीस सोने के, बत्तीस चाँदी के, बत्तीस सोने-चाँदी के उत्कञ्चन दीपक (दण्ड युक्त दीपक—मशाल), इसी प्रकार सोने, चाँदी और सोने-चाँदी इन तीनों प्रकार के बत्तीस पञ्जर-दीपक दिये तथा सोने, चाँदी और सोने-चाँदी के बत्तीस थाल, बत्तीस थालियाॅ, बत्तीस मल्लक (कटोरे), बत्तीस तलिका (रकाबियाँ), बत्तीस कलाचिका (चम्मच), बत्तीस तापिकाहस्तक (संडासियाँ), बत्तीस तवे, बत्तीस पादपीठ (पैर रखने के बाजौठ), बत्तीस भिषिका (आसन विशेष), बत्तीस करोटिका (लोटा), बत्तीस पलंग, बत्तीस प्रतिशय्या (छोटे पलंग), बत्तीस हंसासन, बत्तीस क्रौचासन, बत्तीस गरुडासन, बत्तीस उन्नतासन, बत्तीस अवनतासन, बत्तीस दीर्घासन, बत्तीस भद्रासन, बत्तीस पक्षासन, बत्तीस मकरासन, बत्तीस पद्मासन, बत्तीस दिक्स्वस्तिकासन, बत्तीस तेल के डिब्बे इत्यादि सभी राजप्रश्नीय-सूत्र के अनुसार जानना चाहिए, यावत् बत्तीस सर्षप के डिब्बे, बत्तीस कुब्जा दासियाँ इत्यादि सभी औपपातिकसूत्र के अनुसार जानना चाहिए, यावत् बत्तीस पारस देश की दासियाँ, बत्तीस छत्र, बत्तीस छत्रधारिणी दासियाँ, वत्तीस चामर, बत्तीस चामरधारिणी दासियाँ, वत्तीस पंखे, वत्तीस पंखाधारिणी दासियाँ, वत्तीस करोटिका (ताम्बूल के

करण्डिए), बत्तीस करोटिकाधारिणी दासियाँ, बत्तीस धात्रियाँ (दूध पिलाने वाली धाय) यावत् बत्तीस अङ्कधात्रियाँ, बत्तीस अङ्गमर्दिका (शरीर का अल्प मर्दन करने वाली दासियाँ), बत्तीस स्नान कराने वाली दासियाँ, बत्तीस अलङ्कार पहनाने वाली दासियाँ, बत्तीस चन्दन घिसनेवाली दासियाँ, बत्तीस ताम्बूलचूर्ण पीसने वाली, बत्तीस कोष्ठागार की रक्षा करने वाली, बत्तीस परिहास करने वाली, बत्तीस सभा में पास रहने वाली, बत्तीस नाटक करने वाली, बत्तीस कौटुम्बिक (साथ जाने वाली), बत्तीस रसोई बनाने वाली, बत्तीस भण्डार की रक्षा करने वाली, बत्तीस तरुणियाँ, बत्तीस पुष्प धारण करने वाली (मालिनें), बत्तीस पानी भरने वाली, बत्तीस बलि करने वाली, बत्तीस शय्या बिछाने वाली, बत्तीस आभ्यन्तर और बत्तीस बाह्य प्रतिहारियाँ, बत्तीस माला बनाने वाली और बत्तीस पेषण करने (पीसने) वाली दासियाँ दीं। इसके अतिरिक्त बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, वस्त्र तथा विपुल धन, कनक यावत् सारभूत धन दिया, जो सात पीढ़ी तक इच्छापूर्वक देने और भोगने के लिए पर्याप्त था। तब धन्यकुमार ने प्रत्येक पत्नी को एक-एक हिरण्यकोटि, एक-एक स्वर्णकोटि, इत्यादि पूर्वोक्त सभी वस्तुएँ दे दीं यावत् एक-एक पेषणकारी दासी तथा बहुत-सा हिरण्य-सुवर्ण आदि विभक्त कर दिया यावत् ऊँचे प्रासादों में—जिनमें मृदंग बज रहे थे, यावत् धन्यकुमार सुखभोगों में लीन हो गया।

विवेचन—उक्त सूत्र में धन्यकुमार के बालकपन, विद्याध्ययन, विवाहसंस्कार और सांसारिक सुखों के अनुभव के विषय में कथन किया गया है। यह सब वर्णन ज्ञातासूत्र के प्रथम अथवा पाँचवें अध्ययन के साथ मिलता है, अतः जिज्ञासु वहीं से अधिक जान लें।

धन्यकुमार का प्रव्रज्या-प्रस्ताव

४—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे जाव (भगवं महावीरे) समोसढे। परिसा निग्गया। राया जहा कोणिओ तहा जियसत्तू निग्गओ। तए णं तस्स धण्णस्स तं महया जहा जमाली तहा निग्गओ। नवरं पायचारेणं जाव [एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, एग० करित्ता आयंते चोक्खे, परमसुइब्भूए, अंजलिमउलियहत्थो जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करेत्ता जाव तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ। तए णं समणे भगवं महावीरे धण्णस्स कुमारस्स तीसे य महतिमहालियाए इसि० जाव धम्मकहा० जाव परिसा पडिगया।

तए णं धण्णे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा, णिसम्म हट्ठ-तुट्ठ जाव हियए, उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव णमंसित्ता एवं वयासी—

सद्दहामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं ।

पत्तियामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं ।

रोएमि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं ।

अब्भुट्ठेमि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं ।

एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते ! असंदिद्धमेयं भंते ! जाव से जहेयं तुब्भे वयह, जं] नवरं—

अम्मयं भद्दं सत्थवाहिं आपुच्छामि। तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव [मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वयामि।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं।

जाव जहा जमाली तहा आपुच्छइ [तए णं से धण्णे कुमारे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव णमंसित्ता, जाव जेणेव अम्मा-पियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मा-पियरो जएणं विजएणं वद्धावेइ, जएणं विजएणं वद्धावित्ता एवं वयासी—एवं खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मे णिसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए, अभिरुइए। तए णं धण्णं कुमारं अम्मा-पियरो एवं वयासी—धण्णे सि णं तुमं जाया ! कयत्थे सि णं तुमं जाया ! कयपुण्णे सि णं तुमं जाया ! कयलक्खणे सि णं तुमं जाया ! जं णं तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मे णिसंते, से वि य धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए, अभिरुइए।

तए णं से धण्णे कुमारे अम्मा-पियरो दोच्चंपि तच्चं पि एवं वयासी—एवं खलु मए अम्मयाओ! समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे णिसंते, जाव अभिरुइए। तए णं अहं अम्मयाओ ! संसारभयउव्विग्गे, भीए जम्म-जरा-मरणेणं, तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

उस काल और उस समय में श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर काकंदी नगरी में पधारे। परिषद् निकली। कोणिक की तरह जितशत्रु राजा भी दर्शनार्थ निकला। जमाली के समान धन्यकुमार भी साज-सज्जा के साथ निकला। विशेष यह है कि धन्यकुमार पैदल चल कर ही भगवान् की सेवा में पहुँचा।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास धर्म सुनकर और हृदय में धारण करके धन्यकुमार हर्षित और सन्तुष्ट हृदय वाला हुआ यावत् खड़े होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया और इस प्रकार कहा—

हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ।

हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर विश्वास करता हूँ।

हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर रुचि करता हूँ।

हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन के अनुसार प्रवृत्ति करने को तत्पर हुआ हूँ।

हे भगवन् ! यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन सत्य है, तथ्य है, असंदिग्ध है, जैसा कि आप कहते हैं।

हे भगवन् ! मैं अपनी माता—भद्रा सार्थवाही की आज्ञा लेकर, गृहवास का त्याग करके, मुण्डित होकर आपके पास अनगार-धर्म स्वीकार करना चाहता हूँ।

भगवान् ने कहा—देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो, धर्म-कार्य में समयमात्र भी प्रमाद मत करो।

जब श्रमण भगवान् महावीर ने धन्यकुमार से पूर्वोक्त प्रकार से कहा तो धन्यकुमार हर्षित और सन्तुष्ट हुआ। उसने भगवान् को तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया। फिर वह अपने माता-पिता के पास आया और जय-विजय शब्दों से बधाकर इस प्रकार बोला—हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से धर्म सुना है। वह धर्म मुझे इष्ट, अत्यन्त इष्ट और रुचिकर हुआ है।

तब माता-पिता ने धन्यकुमार से कहा—बेटा ! तुम धन्य हो ! तुम कृतार्थ हो, बेटा ! तुम पुण्यशाली हो, बेटा! तुम सुलक्षण हो कि तुमने भगवान् के मुख से धर्म श्रवण किया और वह धर्म तुम्हें प्रिय, अतिशय प्रिय और

रुचिकर लगा।

तब धन्यकुमार ने दूसरी और तीसरी बार भी अपने माता-पिता से इसी प्रकार कहा, साथ ही कहा कि हे माता-पिता ! मैं संसार के भय से उद्विग्न हुआ हूँ, जन्म, जरा और मरण से भयभीत हुआ हूँ। अतः हे माता-पिता ! मैं आपकी आज्ञा होने पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निकट मुण्डित होकर, गृहवास का त्याग करके अनगार-धर्म स्वीकार करना चाहता हूँ।

प्रव्रज्या-सम्मति

५—तए णं सा धण्णस्स कुमारस्स माया तं अणिट्ठं, अकंतं, अप्पियं अमणुण्णं अमणामं, असुयपुव्वं गिरं सोच्चा मुच्छिया। वुत्तपडिवुत्तया जहा महब्बले। [रोयमाणी] कंदमाणी, सोयमाणी, विलवमाणी जाव [धण्णं कुमारं एवं वयासी—तुमं सि णं जाया ! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे, कंते, पिए, मण्णुणे, मणामे, थेज्जे, वेसासिए, सम्मए, बहुमए, अणुमए, भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए, जीवियउस्सासे हिययणंदिजणणे उंबरपुप्फमिव दुल्लहे सवणयाए किमंग ! पुण पासणयाए ! तं णो खलु जाया ! अम्हे इच्छामो तुब्भं खणमवि विप्पओगं सहित्तए, तं अच्छाहि ताव जाया ! जाव ताव अम्हे जीवामो, तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं समाणेहिं परिणयवये, वड्ढियकुलवंसतंतुकज्जम्मि णिरवयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिसि।

तए णं धण्णे कुमारे अम्मा-पियरो एवं वयासी—तहेव णं तं अम्मयाओ ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह, तुमं सि णं जाया ! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते चेव, जाव पव्वइहिसि; एवं खलु अम्मयाओ ! माणुस्सए भवे अणेगजाइ-जरा-मरण-रोग-सारीरमाणसपकामदुक्ख-वेयण-वसण-सओवद्दवाभिभूए, अधुवे, अणिइए, असासए संज्झब्भरागसरिसे, जलबुब्बुयसमाणे, कुसग्गजलबिंदुसण्णिभे, सुविणगदंसणोवमे, विज्जुलया-चंचले, अणिच्चे, सडणपडणविद्धंसणधम्मे, पुव्विं वा पच्छा वा अवस्स विप्पजहियव्वे भविस्सइ, से केस णं जाणइ अम्मयाओ ! के पुव्विं गमणयाए, के पच्छा गमणयाए? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स जाव-पव्वइत्तए।

तए णं तं धण्णं कुमारं भद्दा सत्थवाही जाहे णो संचाएइ जाव जियसत्तुं आपुच्छइ, इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! धण्णस्स दारयस्स णिक्खममाणस्स छत्त-मउड-चामराओ य विदिन्नाओ।

तए णं जियसत्तू राया भद्दं सत्थवाहिं एवं वयासी—अच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिए ! सुनिवृत्त-वीसत्था, अहण्णं सयमेव धण्णस्स दारयस्स निक्खमणसक्कारं करिस्सामि।

सयमेव जितसत्तू निक्खमणं करेइ, जहा थावच्चापुत्तस्स कण्हो।

तए णं धण्णे दारए सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ जाव पव्वइए ।

तए णं धण्णे दारए अणगारे जाए ईरियासमिए जाव गुत्तबंभचारी।

धन्यकुमार की माता उसके उपर्युक्त अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ, मन को अप्रिय, अश्रुतपूर्व (जो पहले कभी नहीं सुनी) ऐसी (आघातकारक) वाणी सुनकर, मूर्छित हो गई। तत्पश्चात् होश में आने पर उनका कथन और प्रतिकथन हुआ। वह रोती हुई, आक्रन्दन करती हुई, शोक करती हुई और विलाप करती हुई महाबल के कथन

के सदृश इस प्रकार कहने लगी—"हे पुत्र ! तू मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम (मनगमता), आधारभूत, विश्वासपात्र, सम्मत, बहुमत, अनुमत, आभूषणों की पेटी के तुल्य, रत्नस्वरूप, रत्नतुल्य, जीवित के उच्छ्वास के समान और हृदय को आनन्ददायक एक ही पुत्र है। उदुम्बर (गूलर) के पुष्प के समान तेरा नाम सुनना भी दुर्लभ है, तो तेरा दर्शन दुर्लभ हो इसमें तो कहना ही क्या ? अतः हे पुत्र ! तेरा वियोग मुझसे एक क्षण भी सहन नहीं हो सकता। इसलिए जब तक हम जीवित हैं तब तक घर ही रह कर कुल वंश की अभिवृद्धि कर। जब हम कालधर्म को प्राप्त हो जाएँ और तुम्हारी उम्र परिपक्व हो जाय तब, कुल वंश की वृद्धि करके तुम निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास मुण्डित होकर अनगार धर्म को स्वीकार करना।"

तब धन्यकुमार ने अपने माता-पिता से इस प्रकार कहा—"हे माता-पिता ! अभी आपने जो कहा कि हे पुत्र ! तू हमें इष्ट, कान्त, प्रिय आदि है यावत् हमारे कालगत होने पर तू दीक्षा अंगीकार करना इत्यादि। परन्तु हे माता-पिता ! यह मनुष्य जीवन जन्म, मरण, रोग, व्याधि, अनेक शारीरिक और मानसिक दुःखों की अत्यन्त वेदना से और सैंकड़ों व्यसनों (कष्टों) से पीड़ित है। यह अध्रुव अनित्य और अशाश्वत है। सन्ध्याकालीन रंगों के समान, पानी के परपोटे (बुदबुदे) के समान, कुशाग्र पर रहे हुए जल-बिन्दु के समान, स्वप्न-दर्शन के समान तथा बिजली की चमक के समान चंचल और अनित्य है। सड़ना, पड़ना, गलना और विनष्ट होना इसका धर्म (स्वभाव) है। पहले या पीछे एक दिन अवश्य ही छोड़ना पड़ता है; तो हे माता-पिता ! इस बात का निर्णय कौन कर सकता है कि हममें से कौन पहले जायगा (मरेगा) और कौन पीछे जायगा ? इसलिए हे माता-पिता ! आप मुझे आज्ञा दीजिये। आपकी आज्ञा होने पर मैं श्रमण भगवान् महावीर के पास प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।"

जब धन्यकुमार की माता भद्रा सार्थवाही उसे समझाने-बुझाने में समर्थ नहीं हुई, तब उसने धन्यकुमार को प्रव्रज्या लेने की आज्ञा दे दी। जिस प्रकार थावच्चापुत्र की माता ने कृष्ण से छत्र चामरादि की याचना की, उसी प्रकार भद्रा ने भी जितशत्रु राजा से छत्र चामर आदि की याचना की, तब जितशत्रु राजा ने भद्रा सार्थवाही से कहा—'देवानुप्रिये! तुम निश्चिन्त रहो। मैं स्वयं धन्यकुमार का दीक्षा-सत्कार करूँगा।' तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने स्वयं ही धन्यकुमार का दीक्षा-सत्कार किया। जिस प्रकार कृष्ण ने थावच्चापुत्र का दीक्षामहोत्सव सम्पन्न किया था।

तत्पश्चात् धन्यकुमार ने स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया यावत् प्रव्रज्या अंगीकार की। धन्यकुमार भी प्रव्रजित होकर अनगार हो गया। ईर्या-समिति, भाषा-समिति से युक्त यावत् गुप्तब्रह्मचारी हो गया।

विवेचन—इस सूत्र में धन्यकुमार को किस प्रकार वैराग्य उत्पन्न हुआ, इस विषय का वर्णन किया गया है। जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी काकन्दी नगरी में पधारे तो नगर की परिषद् के साथ धन्यकुमार भी उनके दर्शन करने और उनसे उपदेशामृत पान करने के लिए उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। उपदेश का धन्यकुमार पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह तत्काल ही सम्पूर्ण सांसारिक भोग-विलासों को ठोकर मार कर अनगार बन गया।

इस सूत्र में हमें चार उदाहरण मिलते हैं। उनमें से दो धन्यकुमार के विषय में हैं और शेष दो में से एक जितशत्रु राजा का कोणिक राजा से तथा चौथा दीक्षा-महोत्सव का कृष्ण वासुदेव द्वारा किये हुए थावच्चापुत्र के दीक्षा-महोत्सव से हैं। ये सब 'औपपातिकसूत्र', 'भगवतीसूत्र' तथा 'ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र' से लिए गए हैं। इन सब का उक्त सूत्रों में विस्तृत वर्णन मिलता है। अतः जिज्ञासु को इन आगमों का एक बार अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए। ये सब आगम ऐतिहासिक दृष्टि से भी अत्यन्त उपयोगी हैं। यहाँ उक्त वर्णनों को दोहराने की आवश्यकता

न जान कर संक्षेप कर दिया गया।

दीक्षा की अनुमति प्राप्त करने के प्रसंग में ब्रैकेट में जो पाठ–मूल और अर्थ में दिया गया है वह जमाली के प्रसंग का है, अतएव उनमें 'अम्मापियरो' (माता–पिता) का उल्लेख है किन्तु धन्य कुमार के विषय में घटित नहीं होता, अतः यहाँ केवल माता का ही ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकरण में पिता का कहीं उल्लेख नहीं है। पाठकों को यह ध्यान में रखना चाहिए।

धन्य मुनि की तपश्चर्या

६—तए णं से धण्णे अणगारे जं चेव दिवसे मुंडे भवित्ता जाव [अगाराओ अणगारियं] पव्वइए, तं चेव दिवसं समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

एवं खलु इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं आयंबिलपरिग्गहिएणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरित्तए। छट्ठस्स वि य णं पारणयंसि कप्पेइ मे आयंबिलं पडिगाहेत्तए नो चेव णं अणायंबिलं। तं पि य संसट्ठं नो चेव णं असंसट्ठं। तं पि य णं उज्झिय–धम्मियं नो चेव णं अणुज्झियधम्मियं। तं पि य जं अण्णे बहवे समण–माहण–अतिहि–किवण–वणीमगा नावकंखंति।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।

तए णं से धण्णे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठ–तुट्ठ जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तदनन्तर धन्य अनगार जिस दिन प्रव्रजित हुए यावत् गृहवास त्याग कर अगेही बने, उसी दिन श्रमण भगवान् महावीर को वंदन किया, नमस्कार किया तथा वंदन और नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

भंते ! आप से अनुज्ञात होकर जीवन–पर्यन्त निरन्तर षष्ठ–बेला तप से तथा आयंबिल के पारणे से मैं अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करना चाहता हूँ। षष्ठ तप के पारणा में भी मुझे आयंबिल ग्रहण करना कल्पता है, परन्तु अनायंबिल ग्रहण करना नहीं कल्पता। वह भी संसृष्ट हाथों आदि से लेना कल्पता है, असंसृष्ट हाथों आदि से लेना नहीं कल्पता। वह भी उज्झितधर्म वाला (त्याग देने—फेंक देने योग्य) ग्रहण करना कल्पता है, अनुज्झित–धर्म वाला नहीं कल्पता। उसमें भी वह भक्त–पान कल्पता है, जिसे लेने की अन्य बहुत से श्रमण, माहण (ब्राह्मण), अतिथि, कृपण और वनीपक (भिखारी) इच्छा न करें।

धन्य अनगार से भगवान् ने कहा—हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुखकर हो, वैसा करो, परन्तु प्रमाद मत करो।

अनन्तर वह धन्य अनगार भगवान् महावीर से अनुज्ञात होकर यावत् हर्षित एवं तुष्ट होकर जीवन–पर्यन्त निरन्तर षष्ठ तप से अपने आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

विवेचन—इस सूत्र में धन्य अनगार की आहार और शरीर विषयक अनासक्ति का तथा रसनेन्द्रियसंयम का विशेष रूप से प्रतिपादन किया गया है। वे दीक्षा प्राप्त कर इस प्रकार धर्म में तल्लीन हो गये कि दीक्षा के दिन से उनकी प्रवृत्ति उग्र तप करने की ओर हो गई। उसी दिन निर्णय कर उन्होंने भगवान् से निवेदन किया — भगवन्! मैं आपकी आज्ञा से जीवन भर षष्ठ (बेले) तप का आयंबिल–पूर्वक पारणा करूँ। उनकी इस तरह की धर्मरुचि

देख कर श्री भगवान् ने अनुमति दे दी। धन्य अनगार ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तप अंगीकार कर लिया।

'उज्झित-धर्मिक' उसे कहते हैं, जिस अन्न को विशेषतया कोई नहीं चाहता हो। टीका में कहा है—''उज्झिय-धम्मियं ति, उज्झितं—परित्यागः स एव धर्मः —पर्यायो यस्यास्तीति उज्झितधर्मः'' अर्थात् जो अन्न सर्वथा त्याग कर देने योग्य या फेंक देने के योग्य हो, वह 'उज्झित-धर्म' होता है। आयंबिल के दिन धन्य अनगार ऐसा ही आहार किया करते थे।

७—तए णं से धण्णे अणगारे पढमछट्ठखमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ। जहा गोयमसामी तहेव आपुच्छइ, जाव [बीयाए पोरिसीए झाणं झियायइ, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलम-संभंते मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भायणाइं वत्थाइं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भायणाइं पमज्जइ, पमज्जित्ता भायणाइं उग्गहेइ उग्गहित्ता, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए छट्ठक्खमणपारणगंसि कायंदीए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं ।

तए णं धण्णे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता अतुरियमचवलमसंभंते जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहमाणे सोहमाणे] जेणेव कायंदी णगरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कायंदीए णयरीए उच्च० जाव [नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुयाणस्स भिक्खायरियं] अडमाणे आयंबिलं, नो अणायंबिलं जाव[1] नावकंखंति।

तए णं से धण्णे अणगारे ताए अब्भुज्जयाए पययाए पयत्ताए पग्गहियाए एसणाए एसमाणे जइ भत्तं लभइ, तो पाणं न लभइ, अह पाणं लभइ तो भत्तं न लभइ।

तए णं से धण्णे अणगारे अदीणे अविमणे अकलुसे अविसादी अपरितंतजोगी जयणघडणजोग-चरित्ते अहापज्जत्तं समुदाणं पडिगाहेइ, पडिगाहित्ता कायंदीओ नयरीओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जहा गोयमे जाव [जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामन्ते गमणागमणाए पडिक्कमइ एसणमणेसणं आलोएइ, आलोएत्ता भत्तपाणं] पडिदंसेइ।

तए णं से धण्णे अणगारे समणेणं भगवया अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए जाव [अगिद्धे अगढिए] अणज्झोववण्णे बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं आहारं आहारेइ, आहारित्ता संजमेण तवसा जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

अनन्तर धन्य अनगार ने प्रथम षष्ठ तप के पारणा के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया। जिस प्रकार गौतम ने भगवान् से पूछा, उसी प्रकार पारणा के लिए धन्य अनगार ने भी भगवान् से पूछा, यावत् [दूसरी पौरिसी में ध्यान ध्याया, तीसरी पौरिसी में शारीरिक शीघ्रता रहित, मानसिक चपलता रहित, आकुलता और उत्सुकता रहित होकर

---

१. अणुत्तरोववाइय वर्ग ३, सूत्र ६.

मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना की, फिर पात्रों की और वस्त्रों की प्रतिलेखना की। तत्पश्चात् पात्रों का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके पात्रों को लेकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आये, वहाँ आकर भगवान् को वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—भगवन् ! आज मेरे बेले के पारणे का दिन है, सो आपकी आज्ञा होने पर मैं काकन्दी नगरी में ऊँच, नीच और मध्यम कुल में भिक्षा की विधि के अनुसार भिक्षा लेने के लिए जाना चाहता हूँ।

श्रमण भगवान् महावीर ने धन्य अनगार से कहा—हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो उस प्रकार करो, विलम्ब न करो।

भगवान् की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर धन्य अनगार भगवान् के पास से, सहस्राम्रवन उद्यान से निकले। निकल कर शारीरिक त्वरा (शीघ्रता) और मानसिक चपलता से रहित एवं आकुलता व उत्सुकता से रहित युग (धूसरा) प्रमाण भूमि को देखते हुए ईर्यासमितिपूर्वक काकन्दी नगरी में आये। वहाँ उच्च, नीच और मध्यम कुलों में यावत् घूमते हुए आयंबिल-स्वरूप रूक्ष आहार ही धन्य अनगार ने ग्रहण किया। यावत् सरस आहार ग्रहण करने की आकांक्षा नहीं की।

अनन्तर धन्य अनगार ने सुविहित, उत्कृष्ट प्रयत्न वाली गुरुजनों द्वारा अनुज्ञात एवं पूर्णतया स्वीकृत एषणा से गवेषणा करते हुए यदि भक्त प्राप्त किया, तो पान प्राप्त नहीं किया और यदि पान प्राप्त किया तो भक्त प्राप्त नहीं किया।

(ऐसी अवस्था में भी) धन्य अनगार अदीन, अविमन अर्थात् प्रसन्नचित्त, अकलुष अर्थात् कषायरहित, अविषादी अर्थात् विषादरहित, अपरिश्रान्तयोगी अर्थात् निरन्तर समाधियुक्त रहे। प्राप्त योगों (संयम-व्यापारों) में यतना (उद्यम) वाले एवं अप्राप्त योगों की घटना-प्राप्त्यर्थ यत्न जिसमें है इस प्रकार के चारित्र का उन्होंने पालन किया। वह यथाप्राप्त समुदान अर्थात् भिक्षान्न को ग्रहण कर काकन्दी नगरी से बाहर निकले, भगवान् के निकट आए, यावत् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की सेवा में उपस्थित होकर गमनागमन सम्बन्धी प्रतिक्रमण किया, भिक्षा लेने में लगे हुए दोषों का आलोचन किया। उन्हें आहार-पानी दिखलाया।

अनन्तर धन्य अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर से अनुज्ञात होकर अमूर्छित यावत् गृद्धि-रहित—भोजन में राग से रहित अर्थात् अनासक्त भाव से इस प्रकार आहार किया, जिस प्रकार सर्प बिल में प्रवेश करते समय बिल के दोनों पार्श्व भागों को स्पर्श न करके मध्यभाग से ही उसमें प्रवेश करता है। अर्थात् धन्य अनगार ने सर्प जैसे सीधा बिल में प्रवेश करता है उस तरह स्वाद की आसक्ति से रहित होकर आहार किया। आहार करके संयम और तप से यावत् आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

विवेचन—यहाँ सूत्रकार ने धन्य अनगार के दृढ प्रतिज्ञा-पालन का वर्णन किया है। प्रतिज्ञा ग्रहण करने के अनन्तर वह जब भिक्षा के लिए नगर में गए तो ऊँच, मध्य और नीच अर्थात् सधन, निर्धन एवं मध्यम घरों में आहार-पानी के लिए अटन करते हुए जहाँ उज्झित आहार मिलता था वहीं से ग्रहण करते थे। उन्हें बड़े उद्यम से प्राप्त होने वाली, गुरुओं से आज्ञप्त, उत्साह के साथ स्वीकार की हुई एषणा-समिति से युक्त भिक्षा में जहाँ भोजन मिला, वहाँ पानी नहीं मिला तथा जहाँ पानी मिला वहाँ भोजन नहीं मिला। इस पर भी धन्य अनगार कभी दीनता, खेद, क्रोध आदि कलुषता और विषाद अनुभव नहीं करते थे, प्रत्युत निरन्तर समाधि-युक्त होकर, प्राप्त योगों में अभ्यास बढ़ाते हुए और अप्राप्त योगों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हुए जो कुछ भी भिक्षावृत्ति में प्राप्त होता था

उसको ग्रहण करते थे।

इस प्रकार वे अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहे और उसी के अनुसार आत्मा को दृढ और निश्चल बनाकर संयम-मार्ग में प्रसन्नचित्त होकर विचरते रहे। भिक्षा में उनको जो कुछ भी आहार प्राप्त होता था उसको वे इतनी अनासक्ति से खाते थे जैसे एक सर्प सीधा ही अपने बिल में घुस जाता है अर्थात् वे भोजन को स्वाद लेकर न खाते थे, प्रत्युत संयमनिर्वाह के लिए शरीररक्षा ही उनको अभीष्ट थी।

'बिलमिव पण्णगभूतेणं' शब्द का वृत्तिकार यह अर्थ करते हैं—"यथा बिले पन्नगः पार्श्व संस्पर्शेनात्मानं प्रवेशयति तथायमाहारं मुखेन संस्पृशन्निव रागविरहितत्वादाहारयति" अर्थात् जैसे सर्प पार्श्वभाग का स्पर्श न करके ही बिल में प्रवेश करता है, उसी प्रकार धन्य मुनि बिना किसी आसक्ति के आहार करके संयम के योगों में अपनी आत्मा को दृढ करते थे। इतना ही नहीं बल्कि अप्राप्त ज्ञान आदि की प्राप्ति के लिए भी सदा प्रयत्नशील रहते थे।

९—तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ कायंदीओ नयरीओ सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ। पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय-विहारं विहरइ।

तए णं से धण्णे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं से धण्णे अणगारे तेणं उरालेणं जहा खंदओ जाव [विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं सस्सिरीएणं उदग्गेणं उदत्तेणं उत्तमेणं उदारेणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठि-चम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था, जीवंजीवेणं गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं भासित्ता वि गिलाइ, भासं भासमाणे गिलाइ, भासिस्सामीति गिलायइ। से जहानामए कट्ठसगडिया इ वा पत्तसगडिया इ वा पत्त-तिल-भंडगसगडिया इ वा एरंडकट्ठसगडिया इ वा इंगालसगडिया इ वा उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, एवामेव धण्णे वि अणगारे ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, उवचिए तवेणं, अवचिए मंस-सोणिएणं, हुयासणे विव भासरासि-पडिच्छण्णे तवेणं, तेएणं, तव-तेयसिरीए अईव अईव उवसोभेमाणे] उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

अनन्तर श्रमण भगवान् महावीर अन्यदा कदाचित् काकन्दी नगरी के सहस्राम्रवन उद्यान से निकले और बाहर जनपदों में विहार करने लगे।

धन्य अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अङ्गों का अध्ययन किया और इसके पश्चात् वह संयम और तप से अपने आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। तब वह धन्य अनगार उस उदार तप से स्कन्दक की तरह यावत् [उदार, विपुल, प्रदत्त, प्रगृहीत, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्यरूप, मंगलरूप, श्रीसम्पन्न, उत्तम उदग्र-उत्तरोत्तर वृद्धियुक्त, उदात्त-उज्ज्वल, उत्तम उदार और महान् प्रभावशाली तप से शुष्क हो गये, रूक्ष हो गये, मांस रहित हो गये, उनके शरीर की हड्डियाँ चमड़े से ढकी हुई रह गई। चलते समय हड्डियाँ खड़खड़ करने लगीं। वे कृश—दुबले हो गये। उनकी नाड़ियाँ सामने दिखाई देने लगीं। वे केवल अपने आत्मबल से ही गमन करते थे, आत्मबल से ही खड़े होते थे तथा वे इस प्रकार दुर्बल हो गये कि भाषा बोलकर थक जाते थे, भाषा बोलते समय थक जाते थे और भाषा बोलने के पहले, 'मैं भाषा बोलूंगा' ऐसा विचार

करने मात्र से भी थक जाते थे। जैसे सूखी लकड़ियों से भरी हुई गाड़ी, पत्तों से भरी हुई गाड़ी, पत्ते, तिल और सूखे सामान से भरी हुई गाड़ी, एरंड की लकड़ियों से भरी हुई गाड़ी, कोयले से भरी हुई गाड़ी, ये सब गाड़ियाँ धूप में अच्छी तरह सुखाकर जब चलती हैं, खड़-खड़ आवाज करती हुई चलती हैं और आवाज करती हुई खड़ी रहती हैं, इसी प्रकार जब धन्य अनगार चलते, तो उनकी हड्डियाँ खड़-खड़ आवाज करतीं और खड़े रहते हुए भी खड़-खड़ आवाज करतीं। यद्यपि वे शरीर से दुर्बल हो गये थे, तथापि वे तप से पुष्ट थे। उनका मांस और खून क्षीण हो गया था। राख के ढेर में दबी हुई अग्नि की तरह वे तप से, तेज से और तपस्तेज की शोभा से अतीव-अतीव] शोभित हो रहे थे।

विवेचन—सूत्र स्पष्ट है। इसका सम्पूर्ण विषय सुगमतया मूलार्थ से ही ज्ञात हो सकता है। उल्लेखनीय केवल इतना है कि यद्यपि तप और संयम की कसौटी पर चढ़कर धन्य अनगार का शरीर अवश्य कृश हो गया, किन्तु उससे उनका आत्मा अलौकिक बलशाली हो गया था, जिसके कारण उनके मुख का प्रतिदिन बढ़ता हुआ तेज अग्नि के समान देदीप्यमान हो रहा था।

धन्य मुनि की शारीरिक दशा : पैर और अंगुलियों का वर्णन

१०—धण्णस्स णं अणगारस्स पायाणं अयमेयारूवे तवरूवलावण्णे होत्था — से जहानामए सुक्कछल्ली इ वा कट्ठपाउया इ वा जरग्गओवाहणा इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स पाया सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठिचम्मछिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंससोणियत्ताए।

धण्णस्स णं अणगारस्स पायंगुलियाणं अयमेयारूवे तवरूवलावण्णे होत्था—से जहानामए कलसंगलिया इ वा मुग्गसंगलिया इ वा माससंगलिया इ वा, तरुणिया छिण्णा, उण्हे दिण्णा, सुक्का समाणी मिलायमाणी चिट्ठति, एवामेव धण्णस्स पायंगुलियाओ सुक्काओ [लुक्खाओ निम्मंसाओ अट्ठिचम्मछिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस] सोणियत्ताए।

धन्य अनगार के पैरों का तपोजनित रूप-लावण्य (देखाव) इस प्रकार का हो गया था— जैसे— वृक्ष की सूखी छाल हो, काठ की खड़ाऊं हो अथवा पुराना जूता हो। इस प्रकार धन्य अनगार के पैर सूखे थे—रूखे और निर्मांस थे। अस्थि (हड्डि), चर्म और शिराओं से ही वे पहिचाने जाते थे। मांस और शोणित (रक्त) के क्षीण हो जाने से उनके पैरों की पहिचान नहीं होती थी।

धन्य अनगार के पैरों की अंगुलियों का तपोजनित रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था—जैसे— कलाय (मटर) की फलियाँ हों, मूंग की फलियाँ हों, उड़द की फलियाँ हों, और इन कोमल फलियों को तोड़कर धूप में डाल देने पर जैसे वे सूखी और मुर्झायी हो जाती हैं, वैसे ही धन्य अनगार के पैरों की अंगुलियाँ भी सूख गई थीं, रूक्ष हो गई थीं और निर्मांस हो गई थीं, अर्थात् मुरझा गई थीं। उनमें अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थीं, मांस और शोणित उनमें (प्रायः) नहीं रह गया था।

विवेचन—यहाँ सूत्रकार ने धन्य अनगार की शारीरिक दशा में कितना परिवर्तन हो गया था, इस विषय का प्रतिपादन किया है। तप करने से उसके दोनों चरण इस प्रकार सूख गये थे जैसे सूखी हुई वृक्ष की छाल, लकड़ी की खड़ाऊं अथवा पुरानी सूखी हुई जूती हो। उनके पैरों में मांस और रुधिर नाम मात्र के लिए भी दिखाई नहीं देता था। केवल हड्डी, चमड़ा और नसें ही देखने में आती थीं। पैरों की अंगुलियों की भी यही दशा थी। वे भी कलाय, मूंग

या उड़द की उन फलियो के समान हो गई थीं। जो कोमल-कोमल तोड़कर धूप में डाल दी गई हों—मुरझा गई हों। उनमें भी मांस और रुधिर नहीं रह गया था।

धन्य मुनि की जंघाएँ, जानु और उरू

११—धण्णस्स अणगारस्स जंघाणं अयमेयारूवे तवरूवलावण्णे होत्था—से जहानामए काकजंघा इ वा, कंकजंघा इ वा, ढेणियालियाजंघा इ वा जाव [सुक्काओ लुक्खाओ निम्मंसाओ अट्ठिचम्मछिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस] सोणियत्ताए।

धण्णस्स अणगारस्स जाणूणं अयमेयारूवे तवरूवलावण्णे होत्था—से जहानामए कालिपोरे इ वा मयूरपोरे इ वा ढेणियालियापोरे इ वा एवं जाव [धण्णस्स अणगारस्स जाणू सुक्का निम्मंसा अट्ठिचम्मछिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस] सोणियत्ताए।

धण्णस्स उरुस्स अयमेयारूवे तवरूवलावण्णे होत्था—से जहानामए बोरीकरीले इ वा सल्लइकरीले इ वा, सामलिकरीले इ वा, तरुणिए उण्हे जाव [दिण्णे सुक्के समाणे मिलायमाणे] चिट्ठइ, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स ऊरू जाव [सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठिचम्मछिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस] सोणियत्ताए।

धन्य अनगार की जंघाओं (पिंडलियों) का तपोजनित रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था—जैसे—काक पक्षी की जंघा हो, कंक पक्षी की जंघा हो, ढेणिक पक्षी (टिड्डे) की जंघा हो। यावत् [धन्य अनगार की जंघा सूख गई थीं रूक्ष हो गई थीं, निर्मांस हो गई थीं अर्थात् मुरझा गई थीं। उनमें अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थीं, मांस और शोणित उनमें प्रायः नहीं रह गया था।]

धन्य अनगार के जानुओं (घुटनों) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था—जैसे—काली नामक वनस्पति का पर्व (सन्धि या जोड़) हो, मयूर पक्षी का पर्व हो, ढेणिक पक्षी का पर्व हो। यावत् [धन्य अनगार के जानु सूख गए थे, रूक्ष हो गए थे, निर्मांस हो गए थे, अर्थात् मुरझा गए थे। उनमें अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थीं, मांस और शोणित उनमें प्रायः नहीं रह गया था।]

धन्य अनगार की उरूओं-सांथलों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था—जैसे— वदरी, शल्यकी तथा शाल्मली वृक्षों की कोमल कोपलें तोड़ कर धूप में डालने से सूख गई हों—मुरझा गई हों। इसी प्रकार धन्य अनगार की उरू भी [सूख गई थीं, मुरझा गई थीं, उनमें मांस और शोणित नहीं रह गया था]।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में धन्य अनगार की जङ्घा, जानु और उरूओं का वर्णन किया गया है। तीव्रतर तप के प्रभाव से धन्य अनगार की जङ्घाएं मांस और रुधिर के अभाव में ऐसी प्रतीत होती थीं मानो काकजङ्घा नामक वनस्पति की—जो स्वभावतः शुष्क होती है—नाल हों। अथवा यों कहिए कि वे कौवे की जङ्घाओं के समान ही क्षीण—निर्मांस हो गई थीं। उनकी उपमा कङ्क और ढंक पक्षियों की जङ्घाओं से भी दी गई है। इसी प्रकार उनके जानु भी उक्त काकजङ्घा वनस्पति की गांठ के समान अथवा मयूर और ढंक नामक पक्षियों के सन्धि-स्थानों के समान शुष्क हो गये थे। दोनों उरू मांस और रुधिर के अभाव में सूख कर इस तरह मुरझा गये थे जैसे प्रियंगु वदरी, कर्कन्धू, शल्यकी या शाल्मली वनस्पतियों की कोमल-कोंपले तोड़कर धूप में सुखाने से मुरझा जाती हैं।

कहने का तात्पर्य यह कि धन्य अनगार कर्मनिर्जरा के अनन्य कारण तपश्चरण में इस प्रकार तन्मय हो गए कि अपने शरीर से भी निरपेक्ष हो गए। उनको शरीर का मोह भी लेशमात्र नहीं रहा। उन्होंने कठोर से कठोर तप अंगीकार किये। अतः उनके किसी अङ्ग में भी मांस और रुधिर अवशिष्ट नहीं रहा। सर्वत्र केवल अस्थि, चर्म और नसा-जाल ही देखने में आता था। सदेह होकर भी वे विदेह दशा प्राप्त करने में समर्थ हो गए।

कटि, उदर एवं पसलियों आदि का वर्णन

१२—धण्णस्स कडिपत्तस्स इमेयारूवे जाव[१] से जहा जाव[२] उट्टपादे इ वा जरग्गपाए इ वा महिसपाए इ वा जाव[३] सोणियत्ताए।

धण्णस्स उयरभायणस्स इमेयारूवे जाव[४] से जहा जाव[५] सुक्कदिए इ वा, भज्जणयकभल्ले इ वा कट्ठकोलंवए इ वा एवामेव उदरं सुक्कं जाव[६]।

धण्णस्स पासुलियाकडयाणं इमेयारूवे जाव[७] से जहा जाव[८] थासयावली इ वा, पाणावली इ वा, मुंडावली इ वा जाव[९]।

धण्णस्स पिट्ठिकरंडयाणं इमेयारूवे जाव[१०] से जहा जाव[११] कण्णावली इ वा गोलावली इ वा वट्टयावली इ वा एवामेव जाव[१२]।

धण्णस्स उरकडयस्स अयमेयारूवे जाव[१३] से जहा जाव[१४] चित्तकट्टरे इ वा वीणयपत्ते इ वा तालियंटपत्ते इ वा एवामेव जाव[१५]।

धन्य अनगार की कटिपत्र (कमर) का तपस्याजनित रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था— जैसे—ऊँट का पैर हो, बूढ़े बैल का पैरा हो और बूढ़े महिष (भैंसे) का पैर हो। उसमें अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थीं, मांस और शोणित उसमें नहीं रह गया था।

धन्य अनगार के उदर-भाजन (पेट) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था— जैसे—सूखी मशक हो, चणकादि भूनने का खप्पर हो, आटा गूँदने की कठौती हो। इसी प्रकार धन्य अनगार का पेट भी सूख गया था। उसमें मांस और शोणित नहीं रह गया था।

धन्य अनगार की पसलियों का तपस्या के कारण लावण्य इस प्रकार का हो गया था— जैसे—स्थासकों की आवली हो अर्थात् जैसे ढलान पर एक-दूसरे के ऊपर रक्खी हुई दर्पणों के आकार की पंक्ति हो, पाणावली हो अर्थात् एक-दूसरे पर रखे हुए पान-पात्रों (गिलासों) की पंक्ति हो, मुण्डावली अर्थात् स्थाणु—विशेष प्रकार के खूटों की पंक्ति हो। जिस प्रकार उक्त वस्तुएँ गिनी जा सकती हैं, उसी प्रकार धन्य अनगार की पसलियाँ भी गिनी जा सकती थीं। उनमें अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थीं। मांस और शोणित उनमें नहीं रह गया था।

धन्य अनगार के पृष्ठकरण्ड (रीढ का ऊपरी भाग) का स्वरूप ऐसा हो गया था— जैसे—मुकुटों के कांठे अर्थात् मुकुटों की किनारियों के कोरों के भाग-हों, परस्पर चिपकाए हुए गोल-गोल पत्थरों की पंक्ति हो, अथवा

---

१ से १५ — वर्ग ३, सूत्र १०.

लाख के बने हुए बालकों के खेलने के गोले हों। इस प्रकार धन्य अनगार का रीढ–प्रदेश सूखकर मांस और शोणित से रहित हो गया था, अस्थि, चर्म ही उनमें शेष रह गया था।

धन्य अनगार के उरःकटक (वक्षस्थल) अर्थात् छाती का तपोजन्य रूप–लावण्य इस प्रकार का हो गया था—जैसे—बांस की बनी टोकरी के नीचे का हिस्सा हो, बांस की बनी खपच्चियों का पंखा हो अथवा ताड़पत्र का बना पंखा हो। इस प्रकार धन्य अनगार की छाती एकदम पतली होकर सूख कर मांस और शोणित से रहित होकर अस्थि चर्म और शिरा–मात्र शेष रह गए थे।

विवेचन—इस सूत्र में धन्य अनगार के कटि, उदर, पांसुलिका, पृष्ठ–प्रदेश और वक्षःस्थल का उपमाओं द्वारा वर्णन किया गया है। उनका कटि–प्रदेश तप के कारण मांस और रुधिर से रहित हो कर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे—ऊँट या बूढ़े बैल का खुर हो। इसी प्रकार उनका उदर भी सूख गया था। उसकी सूखकर ऐसी हालत हो गई थी जैसी सूखी मशक, चने आदि भूनने का पात्र (भाड़) अथवा कोलम्ब नामक पात्र–विशेष की होती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि धन्य अनगार का उदर इतना सूख गया था कि उक्त वस्तुओं के समान बीच में खोखला जैसा प्रतीत होता था। इसी प्रकार उनकी पसलियाँ भी सूखकर कांटा हो गई थीं। उनको इस तरह गिना जा सकता था जैसे—स्थासक (दर्पण की आकृति) की पंक्ति हो या गाय आदि पशुओं के चरने के पात्रों की पंक्ति अथवा उनके बाँधने की कीलों की पंक्ति हो। उनमें मांस और रुधिर देखने को भी न था। यही दशा पृष्ठ–प्रदेशों की भी थी। उनमें भी मांस और रुधिर नहीं रह गया था और ऐसे प्रतीन होते थे मानो मुकटों की कोरों, पाषाण के गोलकों की अथवा लाख के बने हुए बच्चों के खिलौनों की पंक्ति खड़ी की हुई हो। उस तप के कारण धन्य अनगार के वक्षःस्थल (छाती) में भी परिवर्तन हो गया था। उससे भी मांस और रुधिर सूख गया था और पसलियों की पंक्ति ऐसी दिखाई दे रही थी मानों ये किलिञ्ज आदि के खण्ड हों अथवा यह बांस या ताड़ के पत्तों का बना हुआ पंखा हो।

इन सब अवयवों का वर्णन, जैसा पहले कहा जा चुका है, उपमालङ्कार से किया गया है। इससे एक तो स्वभावतः वर्णन में चारुता आ गई है, दूसरे पढ़ने वालों को वास्तविकता समझने में सुगमता होती है। जो विषय उदाहरण देकर शिष्यों के सामने रखा जाता है, उसको अत्यल्पबुद्धि भी बिना किसी परिश्रम के समझ जाता है।

यहाँ ध्यान रखने योग्य एक बात विशेष है कि धन्य अनगार का शरीर यद्यपि सूखकर काँटा हो गया था किन्तु उनकी आत्मिक तेजस्विता अत्यधिक बढ़ गई थी।

धन्य मुनि के बाहु हाथ अंगुली ग्रीवा दाढी होठ एवं जिह्वा

१३—धण्णस्स णं अणगारस्स बाहाणं जाव[१] से जहानामए जाव[२] समिसंगलिया इ वा बाहायासंगलिया इ वा, अगत्थियसंगलिया इ वा, एवामेव जाव[३]।

धण्णस्स णं अणगारस्स हत्थाणं जाव[४] से जहा जाव[५] सुक्कछगणिया इ वा, वडपत्ते इ वा, पलासपत्ते इ वा, एवामेव जाव[६]।

धण्णस्स णं अणगारस्स हत्थंगुलियाणं जाव[७] से जहा जाव[८] कलसंगलिया इ वा, मुग्गसंगलिया इ वा, माससंगलिया इ वा, तरुणिया छिण्णा आयवे दिण्णा सुक्का समाणी एवामेव जाव[९]।

१-९. —देखिए वर्ग ३, सूत्र ७.

धण्णस्स गीवाए जाव[१] से जहा जाव[२] करगगीवा इ था, कुंडियागीवा इ वा उच्चट्ठवणए इ वा एवामेव जाव[३]।

धण्णस्स णं अणगारस्स हणुयाए जाव[४] से जहा जाव[५] लाउयफले इ वा, हकुवफले इ वा, अंबगट्ठिया इ वा, एवामेव जाव[६]।

धण्णस्स णं अणगारस्स उट्ठाणं जाव[७] से जहा जाव[८] सुक्कजलोया इ वा, सिलेसगुलिया इ वा, अलत्तगुलिया इ वा एवामेव जाव[९]।

धण्णस्स णं अणगारस्स जिब्भाए जाव[१०] से जहा जाव[११] वडपत्ते इ वा पलासपत्ते इ वा, सागपत्ते इ वा एवामेव जाव[१२]।

धन्य अनगार की बाहु अर्थात् कंधे से नीचे के भाग (भुजाओं) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था— जैसे—शमी (खेजड़ी) वृक्ष की सूखी हुई लम्बी-लम्बी फलियाँ हों, बाहाया (अमलतास) वृक्ष की सूखी हुई लम्बी-लम्बी फलियाँ हों, अथवा अगस्तिक (अगतिया) वृक्ष की सूखी हुई फलियाँ हों। इसी प्रकार धन्य अनगार की भुजाएँ भी मांस और शोणित से रहित होकर, सूख गई थीं। उनमें अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थीं, मांस और शोणित उनमें नहीं रह गया था।

धन्य अनगार के कुहनी से नीचे के भागरूप हाथों की अवस्था तप के कारण इस प्रकार की हो गई थी— जैसे—सूखा छाण (कंडा) हो, वड का सूखा पत्ता हो या फ्लाश का सूखा पत्ता हो। इसी प्रकार धन्य अनगार के हाथ भी सूख गये थे, मांस और शोणित से रहित हो गए थे। उनमें अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थीं। मांस और शोणित उनमें नहीं था।

धन्य अनगार के हाथों की अंगुलियों का उग्र तप के कारण इस प्रकार का स्वरूप हो गया था—जैसे— कलाय अर्थात् मटर की सूखी फलियाँ हो, मूंग की सूखी फलियाँ हों अथवा उड़द की सूखी फलियाँ हों। उन कोमल फलियों को तोड़ कर, धूप में सुखाने पर जिस प्रकार वे सूख जाती हैं, कुम्हला जाती हैं, उसी प्रकार धन्य अनगार के हाथों की अंगुलियाँ भी सूख गई थीं, उनमें मांस और शोणित नहीं रह गया था। अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थीं।

धन्य अनगार की ग्रीवा (गर्दन) तप के कारण इस प्रकार की हो गई थी— जैसे—करक (करवा—जल-पात्र विशेष) का कांठा (गर्दन) हो, छोटी कुण्डी (पानी की झारी) की गर्दन हो, उच्च स्थापनक—सुराही की गर्दन हो। इसी प्रकार धन्य अनगार की गर्दन मांस और शोणित से रहित होकर सूखी-स्री और लम्बी सी हो गई थी।

धन्य अनगार की हनु अर्थात् ठोड़ी का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था— जैसे—तुम्बे का सूखा फल हो, रकुब नामक एक वनस्पति अर्थात् हिंगोटे का सूखा फल हो अथवा आम की सूखी गुठली हो। इस प्रकार धन्य अनगार की हनु अर्थात् ठोड़ी भी मांस और शोणित से रहित होकर सूख गई थी।

धन्य अनगार के ओष्ठों का अर्थात् होठों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था— जैसे—सूखी जोंक हो, सूखी श्लेष्म की गुटिका अर्थात् गोली हो, अलतै की गुटिका अर्थात् अगरवत्ती के समान लाख के रस की लम्बी बत्ती हो। इसी प्रकार धन्य अनगार के होठ सूखकर मांस और शोणित से रहित हो गए थे।

१-१२.—देखिए वर्ग ३, सूत्र ७.

धन्य अनगार की जीभ की तपस्या के कारण ऐसी अवस्था हो गई थी— जैसे—वड का सूखा पत्ता हो, पलाश का सूखा पत्ता हो, शाक अर्थात् सागवान वृक्ष का सूखा पत्ता हो। इसी प्रकार धन्य अनगार की जीभ भी सूख गई थी, उसमें मांस नहीं रह गया था और शोणित भी नहीं रह गया था।

विवेचन—इस सूत्र में धन्य अनगार की भुजाओं, हाथों, हाथ की अंगुलियों, ग्रीवा, चिबुक, होठों और जिह्वा का उपमा अलंकार से वर्णन किया गया है। उनकी भुजाएँ अन्यान्य अंगों के समान ही तप के कारण सूख गई थीं और ऐसी दिखाई देती थीं जैसी शमी, अगस्तिक अथवा बाहाया वृक्षों की सूखी हुई फलियाँ होती हैं।

'बाहाया' शब्द के अर्थ का निर्णय करना कठिन है। यह किस वृक्ष की और किस देश में प्रचलित संज्ञा है, कहना मुश्किल है। वृत्तिकार श्री अभयदेवसूरि ने भी इसका अर्थ वृक्षविशेष ही लिखा है। सम्भवतः उस समय किसी प्रांत में यह नाम लोकप्रचलित रहा हो।

यही दशा धन्य अनगार के हाथों की भी थी। उनका भी मांस और रुधिर सूख गया था तथा वे इस तरह दिखाई देते थे जैसा सूखा गोबर (छाणा-कंडा) होता है अथवा सूखे हुए वट और पलाश के पत्ते होते हैं। हाथ की अंगुलियों में भी अत्यन्त कृशता आ गई थी। अंगुलियाँ कभी रक्त और मांस से परिपूर्ण थीं, वे अब सूखकर एक निराली रूक्षता एवं क्षीणता धारण कर रही थीं। सूख जाने से उनकी यह हालत हो गई थी जैसे—एक कलाय, मूंग अथवा माष (उड़द) की फली—जिसे कोमल अवस्था में ही तोड़कर धूप में सुखा दिया गया हो। पहले वाला मांस और रुधिर उनमें देखने को भी शेष नहीं रह गया था। यदि उनको कोई पहचान सकता था तो केवल अस्थि और चर्म से ही, जो उनमें अवशिष्ट रह गये थे।

'बाहु' शब्द यद्यपि संस्कृत भाषा में उकारान्त है, तथापि प्राकृत भाषा में स्त्रीलिंग की विवक्षा होने पर वह आकारान्त हो जाता है। अतः सूत्र में आया हुआ 'बाहाणं' पद प्राकृतव्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है।

सूत्र इस प्रकार है—

बाहोरात् ॥८॥१॥३६॥ बाहुशब्दस्य स्त्रियामाकारान्तादेशो भवति, बाहाए जेण धरिओ एक्काए ॥ स्त्रियामित्येव। वामेअरो बाहू[1] ॥

ग्रीवा में भी अन्य अवयवों के समान मांस और रुधिर का अभाव हो गया था। अतः वह स्वभावतः लम्बी दिखाई देती थी। सूत्रकार ने उसको उपमा लम्बे मुख वाले सुराही आदि पात्रों की दी है। इसके लिए सूत्र में एक 'उच्चस्थापनक' पद आया है, जो इसी प्रकार का एक पात्र होता है।

यही दशा धन्य अनगार के चिबुक की थी। जो चिबुक कभी मांस और रुधिर से परिपूर्ण था, उसकी तपश्चर्या के कारण यह दशा हो गई थी कि जैसे—एक सूखे हुए तुम्बे या हकुव (एक प्रकार की वनस्पति) के फल की होती है अथवा वह ऐसी दिखाई देती है, जैसे—एक आम की गुठली हो।

जो ओठ पहले बिम्बफल के समान रक्त वर्ण थे वे तप के कारण सूखकर विल्कुल विवर्ण हो गये थे। उनकी आकृति अब इस प्रकार हो गई थी जैसी सूखी हुई मेंहदो की गुटिका होती है। जिह्वा भी सूखकर वटवृक्ष के पत्ते के समान अथवा पलाश (ढाक) के पत्ते के समान नीरस और रूखी हो गई थी।

---

१. आचार्य हेमचन्द्रकृत प्राकृतव्याकरण

उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि धन्य अनगार का तप-अनुष्ठान आत्मशुद्धि के लिये ही था। शरीरमोह से वे सर्वथा मुक्त हो गये थे । यह भी इस वर्णन से सिद्ध होता है कि उत्कृष्ट तप ही आत्म-शुद्धि की सामर्थ्य रखता है और इसी के द्वारा कर्मों की निर्जरा भी हो सकती है। यहाँ यह अवश्य स्मरणीय है कि समीचीन तप सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शनपूर्वक ही हो सकता है। सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन के अभाव में किया जाने वाला तप बालतप है। उससे हीनकोटि की देवगति भले प्राप्त हो जाए किन्तु वैमानिक जैसी उच्च देवगति भी प्राप्त नहीं होती। ऐसी स्थिति में उससे मुक्ति जैसे सर्वोत्कृष्ट, लोकोत्तर एवं अनुपम पद की प्राप्ति तो हो ही कैसे सकती है।

धन्य मुनि की नासिका नेत्र एवं शीर्ष

१४—धण्णस्स णं अणगारस्स नासाए जाव[१] से जहा जाव[२] अंबगपेसिया इ वा, अंबाडगपेसिया इ वा, माउलुंगपेसिया इ वा तरुणिया एवामेव जाव[३]।

धण्णस्स णं अणगारस्स अच्छीणं जाव[४] से जहा जाव[५] वीणाछिड्डे इ वा, वद्धीसगछिड्डे इ वा, पभाइयतारिगा इ वा एवामेव जाव[६]।

धण्णस्स कण्णाणं जाव[७] से जहा जाव[८] मूलाछल्लिया इ वा, वालुंकछल्लिया इ वा कारेल्लय-छल्लिया इ वा, एवामेव जाव[९]।

धण्णस्स सीसस्स जाव[१०] से जहा जाव[११] तरुणगलाउए इ वा, तरुणगएलालुए इ वा सिण्हालए इ वा तरुणए जाव [छिण्णे आयवे दिण्णे सुक्के समाणे मिलायमाणे] चिट्ठइ, एवामेव जाव[१२] सीसं सुक्कं लुक्खं निम्मंसं अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायइ, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

एवं सव्वत्थ। नवरं, उयर-भायण-कण्ण-जीहा-उट्ठा एएसिं अट्ठी न भण्णइ, चम्म-छिरत्ताए पण्णायइ त्ति भण्णइ।

धन्य अनगार की नासिका का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था— जैसे—आम की सूखी फाँक हो, आम्रातक अर्थात् एक फल विशेष (आमडे) की सूखी फाँक हो, मातुलिंग अर्थात् बिजौरे की सूखी फाँक हो—उन कोमल फाँकों को काट कर, धूप में सुखाने पर, जिस प्रकार वे मुरझा जाती हैं, सिकुड़ जाती हैं, उसी प्रकार धन्य अनगार की नाक भी मांस और शोणित से रहित होकर सूख गई थी।

धन्य अनगार की आँखों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था— जैसे—वीणा का छिद्र हो, वद्धीसक अर्थात् बांसुरी का छिद्र हो, प्राभातिक तारक अर्थात् प्रभातकाल का प्रभाहीन तारा हो। इस प्रकार धन्य अनगार की आँखें भी मांस और शोणित से रहित हो कर अन्दर की ओर धँस गई थीं तथा वे प्रकाश-हीन-तेजोहीन हो गई थीं। अर्थात् आँखों में कीकी की मात्र टिमटिमाहट ही दिखलाई देती थी।

धन्य अनगार के कानों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था— जैसे-मूले की कटी हुई लम्बी-पतली छाल हो, ककड़ी (चीभड़ा) की कटी हुई लम्बी-पतली छाल हो या करेले की कटी हुई लम्बी-पतली छाल हो। इसी प्रकार धन्य अनगार के कान भी सूख गए थे। उनमें मांस और शोणित नहीं रह गया था।

१-१२. देखिए वर्ग ३, सूत्र १०.

धन्य अनगार के शीर्ष (मस्तक) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था— जैसे—सूखा तुम्बा हो, सूखा सूरणकन्द हो, सूखा तरबूज हो—इन कोमल फलों को काट कर धूप में सुखाने पर जैसे ये सूख जाते हैं, मुरझा जाते हैं, वैसे ही धन्य अनगार का मस्तक भी मांस और शोणित से रहित होने के कारण सूख गया था, मुरझा गया था। उसमें अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थीं।

धन्य अनगार के तपःपूत देह के समस्त अङ्गों का यह सामान्य वर्णन है। विशेषता यह है कि पेट, कान, जीभ, और होठ—इन अवयवों में अस्थि का वर्णन नहीं कहना चाहिए। केवल चर्म और शिराओं से ही इनकी पहिचान होती थी।

विवेचन—इस सूत्र में धन्य अनगार के पूर्वोक्त अङ्गों के समान ही उपमा अलङ्कार से नासिका, कान, नेत्रों और शिर का वर्णन किया गया है। अर्थ मूल पाठ से ही स्पष्ट है।

इस सूत्र में अनेक प्रकार के कन्दों, मूलों और फलों से धन्य अनगार के अवयवों की उपमा दी गई है। उनमें से आम्रातक, मूलक बालुंकी और कारेल्लक ये कन्द और फल विशेषों के नाम हैं। आलुक एक प्रकार का कन्द होता है, जो वर्तमान युग में 'आलू' के नाम से प्रसिद्ध है।

इस प्रकार सूत्रकार ने धन्य अनगार के पैर से लेकर शिर तक सब अङ्गों का वर्णन कर दिया है इसमें विशेषता केवल इतनी ही बतलाई गई है कि उदर-भाजन, जिह्वा, कान, और ओठों के साथ अस्थि शब्द का अन्वय नहीं करना चाहिए क्योंकि इनमें अस्थियाँ नहीं होती हैं। शेष सब अंगों के साथ सुक्कं, लुक्खं, णिम्मंसं, इत्यादि सब विशेषणों का प्रयोग करना चाहिए।

धन्य मुनि की आन्तरिक तेजस्विता

१५—धण्णे णं अणगारे सुक्केणं भुक्केणं लुक्खेणं पायजंघोरुणा, विगयतडिकरालेणं कडिकडाहेणं, पिट्ठिमवस्सिएणं उदरभायणेणं जोइज्जमाणेहिं पासुलियकडएहिं, अक्खसुत्तमाला इव गणेज्जमाणेहिं पिट्ठिकरंडगसंधीहिं, गंगातरंगभूएणं उरकडग-देसभाएणं, सुक्कसप्पसमाणेहिं बाहाहिं, सिढिलकडाली विव लंबंतेहि य अग्गहत्थेहिं, कंपणवाइए विव वेवमाणीए सीसघडीए पव्वायवयण-कमले उब्भडघडमुहे उच्छुद्धणयणकोसे जीवंजीवेणं गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं भासित्ता गिलाइ, भासं भासमाणे गिलाइ, भासं भासिस्सामि त्ति गिलाइ। से जहानामए इंगालसगडिया इ वा। जहा खंदओ तहा, जाव[१] हुयासणे इव भासरासिपलिच्छण्णे तवेणं तेएणं अईव अईव तवतेयसिरीए उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

घोर तपस्वी वह धन्य अनगार मांस आदि के अभाव के कारण सूखे और भूख के कारण बुभुक्षित एवं पैर आदि अवयवों के कृशतर हो जाने के कारण रूक्ष दिखाई देते थे। उनका कटिभाग कटाह (कच्छप की पीठ अथवा भाजनविशेष—कढ़ाई) सरीखा विकृत एवं मांसहीन होने के कारण हड्डियां ऊपर दिखाई देने से विकराल दृष्टिगोचर होता था। मांस-मज्जा और शोणित के अभाव में पीठ से लगे पेट से, निर्मांस होने के कारण स्पष्ट दिखलाई देने वाली पसलियों से, मांस और मज्जारहित होने से रुद्राक्ष की माला के मणकों के समान स्पष्ट गिने जाने योग्य पृष्ट-करडंग (रीढ़) की सन्धियों से, गङ्गा की तरङ्गों के तुल्य स्पष्ट दिखने वाली अस्थियों के कारण उनके वक्षस्थल का भाग

१. देखिए अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग ३, सूत्र ८.

दिख पड़ता था। उनकी भुजाएँ, सूखे हुए सर्प के तुल्य लम्बी एवं सूखी थीं। लोहे की घोड़े की लगाम के तुल्य उनके अग्रहस्त कांपते हुए थे। कम्पनवात-ग्रस्त रोगी के तुल्य उनका मस्तक कांपता रहता था। उनका मुख-कमल म्लान हो गया था। होठों के सूख जाने से उनका मुख टूटे मुखवाले घड़े के समान विकृत दृष्टिगोचर होता था। उनके नयनकोष अन्दर की ओर धँस गये थे। दीर्घ तप से इस प्रकार क्षीण होकर वह धन्य अनगार अपने शरीर के बल से नहीं; परन्तु अपने आत्मबल से ही गमन करते थे। अपने आत्मबल से ही खड़े होते थे और बैठते थे। भाषा बोलकर वे थक जाते थे, बोलते समय भी उन्हें थकावट का अनुभव होता था, यहाँ तक 'मैं बोलूंगा' इस विचार मात्र से ही वे थक जाते थे। जिस समय वह चलते तो उनके शरीर की हड्डियां ऐसी शब्द करती थीं जैसे कोई कोयलों से भरी गाड़ी हो, इत्यादि।

जो दशा स्कन्दक की हो गई थी, वही दशा धन्य अनगार की भी हो गई थी। फिर भी वे राख के ढेर से ढँकी आग के समान अन्दर ही अन्दर आत्म-तेज से प्रदीप्त हो रहे थे। वह धन्य अनगार तप से, तेज से और तपस्तेज की शोभा-आभा से अत्यन्त सुशोभित होकर (अपनी साधना में स्थिर थे, अडिग थे और अडोल थे)।

विवेचन—यहाँ एक ही सूत्र में सूत्रकार ने प्रकारान्तर से धन्य अनगार के सब अवयवों का वर्णन किया है। धन्य अनगार के पैर, जङ्घा और उरू मांस आदि के अभाव में अत्यन्त सूख गये थे और निरन्तर भूखे रहने के कारण बिल्कुल रूक्ष हो गये थे। चिकनाहट उन में नाम-मात्र के लिये भी शेष नहीं थी। कटि मानो कटाह (कच्छप की पीठ अथवा भाजन-विशेष—हलवाई आदि की कढ़ाई) था। वह मांस के क्षीण होने से तथा अस्थियों के ऊपर उठ जाने से इतना भयङ्कर प्रतीत होता था जैसे नदी के ऊँचे तट हों—दोनों ओर ऊँचे और बीच में गहरे। पेट बिलकुल सूख गया था। उस में से यकृत् और प्लीहा भी क्षीण हो गये थे। अतः वह स्वभावतः पीठ के साथ मिल गया था। पसलियों पर का भी मांस बिल्कुल सूख गया था और वे एक-एक अलग-अलग गिनी जा सकती थी। यही हाल पीठ के उन्नत प्रदेशों का भी था। वे भी रुद्राक्ष की माला के दानों के समान सूत्र में पिरोये हुए भी जैसे अलग-अलग गिने जा सकते थे। उर के प्रदेश ऐसे दिखाई देते थे, जैसी गङ्गा की तरङ्गें हों। भुजाएँ सूख कर सूखे हुए साँप के समान हो गई थीं। हाथ अपने वश में नहीं थे और घोड़े की ढीली लगाम के समान अपने आप ही हिलते रहते थे। शिर की स्थिरता भी लुप्त हो गई थी। वह शक्ति से हीन होकर कम्पन-वायु रोग वाले पुरुष के शिर के समान कांपता ही रहता था। इस अत्युग्र तप के कारण जो मुख कभी खिले हुए कमल के समान शोभायमान था, अब मुरझा गया था। ओंठ सूखने के कारण विकृत-से हो गये थे। इससे मुख फूटे हुए घड़े के मुख के समान विकराल दिखाई देता था। उनकी दोनों आँखें भीतर धंस गई थीं। शारीरिक बल बिलकुल शिथिल हो गया था। वे केवल आत्मिक शक्ति से ही चलते थे और खड़े होते थे। इस प्रकार सर्वथा दुर्बल होने के कारण उनके शरीर की यह दशा हो गई थी कि भाषण करने में भी उनको अतीव खेद प्रतीत होता था, थकावट होती थी। कुछ कहते भी थे तो अत्यन्त कष्ट के साथ। शरीर साधारणतः इस प्रकार खचपचा गया था कि जब वे चलते थे तो अस्थियों में परस्पर रगड़ लगने के कारा चलती हुई कोयलों की गाड़ी के समान शब्द उत्पन्न होने लगता था। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार स्कन्दक मुनि का शरीर तप के कारण अत्यन्त क्षीण हो गया था, उसी प्रकार धन्य अनगार का शरीर भी क्षीण, कृश एवं निर्वल हो गया था। किन्तु शरीर क्षीण होने पर भी उनकी आत्मिक दीप्ति वढ़ रही थी। उनकी अवस्था ऐसी हो गई थी जैसे भस्म से आच्छादित अग्नि होती है। उनका आत्मा तप के तेज से और उत्पन्न कान्ति से अलौकिक सुन्दरता धारण कर रहा

था। वे आत्मिक दीप्ति से देदीप्यमान थे।

इस सूत्र में 'उब्भडघडमुहे त्ति' पद की व्याख्या वृत्तिकार ने इस प्रकार की है—'उद्भटं-विकरालं, क्षीणप्राय-दशानच्छदत्वाद् घटकस्येव मुखं यस्य स तथा।' इस कथन से मुख पर मुख-पत्ती बंधी हुई सिद्ध नहीं होती ? ऐसी शंका उपस्थित होती है। समाधान यह है कि यहाँ पर सूत्रकार का तात्पर्य केवल तप के कारण क्षीण शरीर के वर्णन से ही है, धर्मोपकरणों के वर्णन से नहीं। यदि वे शरीर सम्बन्धी अन्य धर्मोपकरणों का वर्णन करते और मुखवस्त्रिका का न करते तो यह शङ्का उपस्थित हो सकती थी। परन्तु यहाँ तो किसी भी उपकरण का वर्णन नहीं किया गया है। अतः स्पष्ट है कि यहाँ सूत्रकार को उनकी शरीर-निरपेक्ष तपश्चर्या का और उसके कारण शरीर के अंगोपांगों पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन करना ही अभिप्रेत है। यदि ऐसा न माना जाय तो उनके कटि आदि अङ्गों के वर्णन के साथ चोलपट्ट आदि का भी वर्णन अवश्य मिलता। अतएव मुख अथवा होठों की कृशता आदि के वर्णन से उनके मुख पर मुखवस्त्रिका का अभाव किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होता।

भगवान् महावीर द्वारा प्रशंसा

१६—तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे। परिसा निग्गया। सेणिए निग्गए। धम्मकहा। परिसा पडिगया। तए णं से सेणिए राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

इमासिं णं भंते! इंदभूइ-पामोक्खाणं चोद्दसण्हं समणसाहस्सीणं कयरे अणगारे महादुक्करकारए चेव महाणिज्जरयराए चेव ?

एवं खलु सेणिया! इमासिं इंदभूइ-पामोक्खाणं चोद्दसण्हं समणसाहस्सीणं धण्णे अणगारे महादुक्करकारए चेव महाणिज्जरयराए चेव।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ इमासिं जाव [इमासिं इंदभूइ-पामोक्खाणं चोद्दसण्हं समण-साहस्सीणं] धण्णे अणगारे महादुक्करकारए चेव महाणिज्जरयराए चेव ?

एवं खलु सेणिया! तेणं कालेणं तेणं समएणं कायंदी नामं नयरी जाव [धण्णे दारए] उप्पिं पासायवडिंसए विहरइ।

तए णं अण्णया कयाई पुव्वाणुपुव्वीए चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव कायंदी नयरी जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागए। उवागमित्ता अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिणहामि संजमेणं जाव [तवसा अप्पाणं भावेमाणे] विहरामि। परिसा निग्गया, तहेव जाव[१] पव्वइए जाव[२] बिलमिव जाव[३] आहारेइ। धण्णस्स णं अणगारस्स पादाणं शरीरवण्णओ सव्वो जाव[४] उवसोभेमाणे-उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

---

१. अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग ३, सूत्र ४.

२. अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग ३, सूत्र ४-५-६.

३. अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग ३, सूत्र ७.

४. अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग ३, सूत्र ७ से १५ तक।

से तेणट्ठेणं सेणिया ! एवं वुच्चइ इमासिं चउदसण्हं समणसाहस्सीणं धण्णे अणगारे महादुक्करकारए महाणिज्जरयराए चेव।

उस काल और उस समय में राजगृह नामका नगर था। गुणशिलक चैत्य था। श्रेणिक वहाँ का राजा था। उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर पधारे। परिषदा निकली। राजा श्रेणिक भी निकला। धर्मकथा हुई। परिषदा वापिस चली गई। अनन्तर उस श्रेणिक राजा ने श्रमण भगवान् महावीर के सान्निध्य में धर्म को सुनकर, विचार कर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया,नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके, भगवान् से इस प्रकार कहा—

भंते ! आपके इन इन्द्रभूति-प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में कौन अनगार महादुष्करकारक है, एवं महा-निर्जराकारक है ?

भगवान् ने उत्तर दिया—श्रेणिक ! इन इन्द्रभूति-प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार ही महादुष्कर-कारक है और महानिर्जराकारक है।

श्रेणिक ने पुनः प्रश्न किया—भंते ! किस दृष्टि से आपने यह कहा कि इन इन्द्रभूति-प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार ही महादुष्करकारक है, महानिर्जराकारक है।

उत्तर में भगवान् ने इस प्रकार कहा—श्रेणिक ! उस काल और उस समय में काकन्दी नाम की नगरी थी। यावत् वहाँ ऊँचे महलों में धन्यकुमार भोगों में लीन था।

अनन्तर मैं अनुक्रम से चलता हुआ, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विहार करता हुआ, जहाँ काकन्दी नगरी थी और जहाँ पर सहस्राम्रवन उद्यान था वहाँ आया। आकर यथाप्रतिरूप (साधुजनोचित) स्थान की याचना की। संयम यावत् तप से भावित होकर रहा। परिषदा निकली, धन्यकुमार प्रव्रजित हुआ। यावत् वह अनासक्ति से आहार करता था। धन्य अनगार के पैर से लेकर मस्तक तक सारे शरीर का वर्णन पूर्ववत् भगवान् ने श्रेणिक को कह सुनाया, ऐसा समझ लेना चाहिए, यावत् वह तप के प्रखर तेज से सुशोभित हो रहा है।

श्रेणिक ! इस दृष्टि से मैं यह कहता हूँ कि इन इन्द्रभूति-प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार महादुष्करकारक है और महानिर्जराकारक है।

श्रेणिक द्वारा धन्य मुनि की स्तुति

१७—तए णं से सेणिए राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ जाव [तुट्ठे] समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता, वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव धण्णे अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धण्णं अणगारे तिक्खुत्तो आयाहिण-पायाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

''धण्णे सि णं तुमं देवाणुप्पिया! सुपुण्णे सुकयत्थे कयलक्खणे सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! तव माणुस्सए जम्मजीवियफले''—त्ति कट्टु वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव

दिसं पाउब्भूए, तामेव दिसं पडिगए।

तदनन्तर श्रेणिक राजा ने श्रमण भगवान् महावीर से इस अर्थ को सुनकर, उस पर विचार कर एवं तुष्ट होकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा की, वन्दन किया तथा नमस्कार किया। वन्दन करके तथा नमस्कार करके जहाँ धन्य अनगार थे, वहाँ आया। आकर धन्य अनगार की प्रदक्षिणा की, उन्हें वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन करके, नमस्कार करके वह इस प्रकार कहने लगा—

"हे देवानुप्रिय ! आप धन्य हो, आप पुण्यशाली हो, आप कृतार्थ हो, आप सुकृतलक्षण हो, हे देवानुप्रिय! आपने मनुष्य-जन्म और मनुष्य-जीवन को सफल किया।"

यह कहकर उसने धन्य अनगार को वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन करके, नमस्कार करके, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, पुनः वहाँ पहुँचा। पहुँच कर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन तथा नमस्कार किया। वन्दन तथा नमस्कार करके जिस दिशा से आया था, उसी दिशा की ओर चला गया।

विवेचन—इस सूत्र का अर्थ मूल पाठ से ही स्पष्ट है। फिर भी वक्तव्य इतना अवश्य है कि जिसमें जो गुण हों उनका निसङ्कोच-भाव से वर्णन करना चाहिए और गुणवान् व्यक्ति का धन्यवाद आदि से उत्साह बढ़ाना चाहिए, जैसे श्रमण भगवान् महावीर ने किया। उन्होंने धन्य अनगार के अति उग्रतर तप का यथातथ्य वर्णन किया और उसकी सराहना की।

इस सब वर्णन से दूसरी शिक्षा हमें यह मिलती है कि एक बार जब संसार से ममत्व-भाव त्याग दिया तो सम्यक् तप के द्वारा आत्म-शुद्धि अवश्य कर लेनी चाहिए। क्योंकि तपश्चरण ही कर्म-निर्जरा का एकमात्र प्रधान उपाय है। यही संसार के सुखों को त्यागने का फल है। जो व्यक्ति साधु बन कर भी ममत्व में फंसा रहे, उसको उस त्याग से किसी प्रकार की भी सफलता की आशा नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से तो वह कहीं का नहीं रहता और उसके इह-लोक और पर-लोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं। धन्य अनगार ने हमारे सामने एक आदर्श उदाहरण उपस्थित किया है। उन्होंने जब एक बार गृहस्थ के सारे सुखों को त्याग कर साधु-वृत्ति अंगीकार कर ली तो उसको सफल बनाने के लिए उत्कृष्ट से उत्कृष्ट तप किया और मुनिजनों को अपने कर्त्तव्य द्वारा बता दिया कि किस प्रकार तप के द्वारा आत्म-शुद्धि होती है और कैसे उक्त तप से आत्मा सुशोभित किया जाता है।

तीसरी शिक्षा जो हमें इससे मिलती है, वह यह कि जब किसी व्यक्ति की स्तुति करनी हो तो उस में वास्तव में जितने गुण हों उन्हीं का वर्णन करना चाहिए। कहने का अभिप्राय यह है कि जितने गुण उस व्यक्ति में विद्यमान हों उन्हीं को लक्ष्य में रख कर स्तुति करना उचित है, न कि और अविद्यमान गुणों का आरोपण करके भी। क्योंकि ऐसी स्तुति कभी-कभी हास्यास्पद बन जाती है। अतः झूठी प्रशंसा कर निरर्थक ही किसी को बाँसों पर नहीं चढ़ाना चाहिए। अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा से प्रशंसनीय व्यक्ति को आत्मभ्रान्ति हो सकती है, उसके विकास की गति अवरुद्ध हो सकती है। यही तीन शिक्षाएँ हैं, जो हमें इस सूत्र से मिलती हैं।

धन्य मुनि वास्तव में यथार्थनामा सिद्ध हुए। स्वयं तीर्थकर देव अपने मुखारविन्द से जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करें उससे अधिक धन्य अन्य कौन हो सकता है ?

धन्य अनगार का सर्वार्थसिद्ध-गमन

१८—तए णं तस्स धण्णस्स अणगारस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्म-जागरियं० इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—

एवं खलु अहं इमेणं उरालेणं जाव [तवोक्कमेणं धमणिसंतए जाए] जहा खंदओ तहेव चिंता। आपुच्छणं। थेरेहिं सद्धिं विउलं दुरूहइ। मासिया संलेहणा। नवमासा परियाओ जाव [पाउणित्ता] कालेमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम जाव [सूर-गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं जाव] नवयगेवेज्जे विमाण-पत्थडे उड्ढं दूरं वीईवइत्ता सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवत्ताए उववण्णे।

थेरा तहेव ओयरंति जाव[1] इमे से आयारभंडए।

भंते ! त्ति भगवं गोयमे तहेव आपुच्छति, जहा खंदयस्स भगवं वागरेइ, जाव[2] सव्वट्ठसिद्धे विमाणे उववण्णे।

"धण्णस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?"

"गोयमा ! तेत्तीस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।"

"से णं भंते ! ताओ देवलोगाओ कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?"

"गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।"

तं एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

॥ पढमं अज्झयणं समत्तं ॥

तत्पश्चात् किसी दिन रात्रि के मध्य भाग में धन्य अनगार के मन में धर्म-जागरिका (धर्म-विषयक विचारणा) करते हुए ऐसी भावना उत्पन्न हुई—

मैं इस प्रकार के उदार तपःकर्म से शुष्क-नीरस शरीर वाला हो गया हूँ, इत्यादि यावत् जैसे स्कन्दक ने विचार किया था, वैसे ही चिन्तना की, आपृच्छना की। स्थविरों के साथ विपुलगिरि पर आरूढ हुए, एक मास की संलेखना की। नौ मास की दीक्षापर्याय यावत् पालन कर काल करके चन्द्रमा से ऊपर यावत् सूर्य ग्रह नक्षत्र तारा नवग्रैवेयक विमान-प्रस्तटों को पार कर सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए।

धन्य मुनि के स्वर्ग-गमन होने के पश्चात् परिचर्या करने वाले स्थविर मुनि विपुलपर्वत से नीचे उतर यावत् 'धन्य मुनि के ये धर्मोपकरण हैं' उन्होंने भगवान् से इस प्रकार कहा।

भगवान् गौतम ने 'भंते !' ऐसा कह कर भगवान् से उसी प्रकार प्रश्न किया, जिस प्रकार स्कन्दक के अधिकार में किया था।

भगवान् महावीर ने उसका उत्तर दिया, यावत् धन्य अनगार सर्वार्थसिद्ध विमान में देव रूप से उत्पन्न हुआ है।

"भंते ! धन्य देव की स्थिति कितने काल की कही है ?"

"हे गौतम ! तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है।"

---

१. अणुत्तरोववाइयदसा, वर्ग १, सूत्र ४

२. अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग १, सूत्र ४

"भंते ! उस देवलोक से च्यवन कर धन्य देव कहाँ जायगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?"

"हे गौतम ! महाविदेहवर्ष से सिद्ध होगा।"

श्री सुधर्मास्वामी ने कहा—हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में धन्य अनगार की अन्तिम समाधि का वर्णन किया गया है और उसके लिए सूत्रकार ने धन्य अनगार की स्कन्दक संन्यासी से उपमा दी है। ज्ञान ध्यान तप त्याग में लीन बने हुए धन्य अनगार को एक समय मध्य-रात्रि में जागरण करते हुए विचार उत्पन्न हुआ कि मुझमें अभी तक उठने की शक्ति विद्यामान है और शासनपति श्रमण भगवान् महावीर भी अभी तक विद्यमान हैं, अतः यह सब अनुकूल सुविधाएँ रहते ही मैं इस जीवन की चरम साधना क्यों न कर लूं। इस विचार के आते ही उन्होंने प्रातःकाल श्रमण भगवन्त की आज्ञा प्राप्त की और आत्म-विशुद्धि के लिए पञ्च महाव्रतों का पुनः पाठ पढ़ा तथा उपस्थित श्रमणों और श्रमणियों से क्षमा याचना कर तथारूप स्थविरों के साथ शनैः शनैः विपुलगिरि पर चढ़ गये। वहाँ पहुंचकर उन्होंने कृष्ण-वर्णी पृथिवी-शिलापट्ट पर प्रतिलेखना कर दर्भ का संस्तारक बिछाया और पद्मासन लगाकर बैठ गये। फिर दोनों हाथ जोड़े और उनसे शिर पर आवर्तन किया। इस प्रकार पूर्व दिशा की ओर मुख कर 'नमोत्थुणं' के पाठ द्वारा पहले सब सिद्धों को नमस्कार किया, फिर उसी से श्री श्रमण भगवान् महावीर को भी नमस्कार किया। कहा—"भगवन् ! वहाँ विराजमान आप सब कुछ देख रहे हैं, अतः मेरी वन्दना स्वीकार करें। मैंने पहले ही आपके समक्ष अष्टादश पापों का त्याग किया था। अब मैं आप की ही साक्षी से उनका फिर से जीवन भर के लिए परित्याग करता हूँ। साथ ही साथ अब अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य पदार्थों का भी आजीवन परित्याग करता हूँ। अपने संयम सहायक शरीर का भी अन्तिम रूप से व्युत्सर्ग करता हूँ। अब पादपोपगमन नामक अनशन धारण करता हूँ।" इस प्रकार श्री श्रमण भगवान् को वन्दन कर और उनको साक्षी बना कर संथारा ग्रहण किया और उसी के अनुसार विचरने लगे। उन्होंने सामायिक आदि से लेकर एकादश अङ्गों का अध्ययन किया, नव मास पर्यन्त दीक्षापर्याय में रहे और एक मास तक अनशन व्रत में व्यतीत किया। साठभक्त अशन-छेदन कर आलोचना-प्रतिक्रमणपूर्वक उत्तम समाधिमरण प्राप्त किया।

यहाँ कहा गया है कि धन्य मुनि ने साठ भक्तों का परित्याग किया तो जिज्ञासा हो सकती है कि भक्त किसे कहते हैं ? उत्तर यह है कि प्रत्येक दिन के दो भक्त अर्थात् आहार या भोजन होते हैं। इस प्रकार एक मास के साठ भक्त हो जाते हैं। इस विषय में वृत्तिकार का कहना है कि—"प्रतिदिनं भोजनद्वयस्य परित्यागात्त्रिंशत दिनैः षष्ठिर्भक्तानां त्यक्ता भवति।" इस प्रकार जब धन्य अनगार ने एक मास पर्यन्त अनशन धारण किया तो साठ भक्तों के परित्याग में कोई सन्देह नहीं रहता। तत्पश्चात् शरीर का परित्याग कर धन्य अनगार सर्वोत्कृष्ट दिव्यलोक सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए इत्यादि कथन स्पष्ट है।

जब उनके साथ गए स्थविरों ने देखा कि धन्य अनगार अपनी इह-लीला संवरण कर स्वर्ग को प्राप्त हो गये हैं तो उन्होंने परिनिर्वाण-प्रत्ययिक कायोत्सर्ग किया अर्थात् 'परिनिर्वाणम्-मरणं यत्र, यच्छरीरस्य परिष्ठापनं तदपि परिनिर्वाणमेव, तदेव प्रत्ययो-हेतुर्यस्य स परिनिर्वाणप्रत्ययः' भाव यह है कि मृत्यु के अनन्तर जो ध्यान किया जाता

है उसको परिनिर्वाण-प्रत्यय कायोत्सर्ग कहते हैं। मृत साधु के शरीर का परिष्ठापन करना भी परिनिर्वाण कहा जाता है। यहाँ समीपस्थ स्थविरों ने धन्य अनगार की मृत्यु देखकर यही कायोत्सर्ग (ध्यान) किया। फिर उनके वस्त्र-पात्र आदि उपकरण उठाकर लाये और श्रमण भगवान् महावीर के पास आकर और उनको धन्य अनगार के समाधि-मरण का समस्त वृत्तान्त सुना दिया। उनके गुणों का गान किया। उनके उपशम-भाव की प्रशंसा की तथा उनके वस्त्र आदि उपकरण श्री भगवान् को सौंप दिए।

उस समय गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की और उनसे प्रश्न किया कि हे भगवन् ! आपका विनीत शिष्य धन्य अनगार समाधिमरण प्राप्त कर कहाँ गया, कहाँ उत्पन्न हुआ है ? वहाँ कितने काल तक उसकी स्थिति होगी और तदनन्तर वह कहाँ उत्पन्न होगा ? उत्तर में श्रमण भगवान् ने कहा—हे गौतम ! मेरा विनयी शिष्य धन्य अनगार समाधिमरण प्राप्त कर सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुआ है। वहाँ उसकी तेतीस सागरोपम की स्थिति है। वहाँ से च्युत होकर वह महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर मोक्ष प्राप्त करेगा, अर्थात् सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होकर परिनिर्वाण प्राप्त कर सर्व दुःखों का अन्त कर देगा।

इस सूत्र से हमें यह शिक्षा प्राप्त होती है कि प्रत्येक साधक को आलोचना आदि क्रिया करके समाधि-पूर्वक मृत्यु का सामना करना चाहिए, जिससे वह अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक सच्चा आराधक रहे और साक्षात् या परम्परा से मोक्षाधिकारी बन सके।



द्वितीय अध्ययन

सुनक्षत्र

१९—"जइ णं भंते ! जाव[1]" उक्खेवओ। एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं कायंदी नयरी। जियसत्तू राया। तत्थ णं कायंदीए नयरीए भद्दा नामं सत्थवाही परिवसइ, अड्ढा। तीसे णं भद्दाए सत्थवाहीए पुत्ते सुणक्खत्ते नामं दारए होत्था अहीण० जाव[2] सुरूवे। पंचधाइपरिक्खित्ते जहा धण्णो तहा बत्तीसओ दाओ जाव[3] उप्पिं पासायवडिंसए विहरइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समोसरणं। जहा धण्णो तहा सुणक्खत्तो वि निग्गओ। जहा थावच्चा-पुत्तस्स तहा निक्खमणं जाव[4] अणगारे जाए ईरियासमिए जाव[5] बंभयारी।

तए णं से सुणक्खत्ते अणगारे जं चेव दिवसं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे जाव[6] पव्वइए तं चेव दिवसं अभिग्गहं। तहेव जाव[7] बिलमिव जाव[8] आहारेइ, संजमेणं जाव[9] विहरइ जाव[10] बहिया जणवय-विहारं विहरइ। एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ जाव[11] संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं से सुणक्खत्ते तेणं उरालेणं जाव[12] जहा खंदओ।

जम्बू अनगार ने आर्य सुधर्मा से पूछा—भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने तीसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है तो दूसरे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ? आर्य सुधर्मा ने जम्बू से इस प्रकार कहा— हे जम्बू ! उस काल और उस समय में काकन्दी नाम की एक नगरी थी। वहाँ का राजा जितशत्रु था। उस काकन्दी नगरी में भद्रा नाम की एक सार्थवाही रहती थी। वह सम्पन्न यावत् अपरिभूता थी। उस भद्रा सार्थवाही के सुनक्षत्र नामक एक पुत्र था। वह अहीन अङ्गोपाङ्ग वाला यावत् सुरूप था। पञ्चधात्रीपरिपालित था। धन्यकुमार की तरह उसे भी बत्तीस का दहेज दिया गया यावत् वह महलों में भोगों में लीन होकर रहने लगा।

उस काल और उस समय में भगवान् महावीर वहाँ पधारे। धन्यकुमार की तरह सुनक्षत्र भी धर्मदेशना श्रवण करने के लिए निकला। थावच्चापुत्र की तरह निष्क्रमण हुआ यावत् वह अनगार हो गया। ईर्यासमित यावत् ब्रह्मचारी हो गया।

अनन्तर वह सुनक्षत्र, जिस दिन भगवान् महावीर के पास मुण्डित हुआ यावत् प्रव्रजित हुआ उसी दिन से उसने अभिग्रह (प्रतिज्ञा) किया, यावत् अनासक्त होकर आहार किया। संयम में यावत् स्थिर होकर विचरण किया।

---

१. अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग १, सूत्र २
२. अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग ३, सूत्र २
३. अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग ३, सूत्र २, ३
४. अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग ३, सूत्र ४-५
५. अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग ३, सूत्र ५
६. अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग ३, सूत्र ५
७-८. अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग ३, सूत्र ७
९. अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग ३, सूत्र ७
१०. अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग ३, सूत्र ९
११. अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग ३, सूत्र ९
१२. अणुत्तरोववाइयदसा वर्ग ३, सूत्र ९

बाहर जनपदों में विहार किया। ग्यारह अङ्गों का अध्ययन किया। संयम तथा तप से आत्मा को भावित कर विचरण करने लगा। अनन्तर वह सुनक्षत्र मुनि उस उदार तप से स्कन्दक की तरह कृश हो गया।

विवेचन—यहाँ से सूत्रकार तीसरे वर्ग के शेष अध्ययनों का वर्णन करते हैं। इस सूत्र में सुनक्षत्र अनगार का वर्णन किया गया है। सूत्र का अर्थ मूलपाठ से ही स्पष्ट है। उदाहरण के लिए सूत्रकार ने थावच्चापुत्र और धन्य अनगार को लिया है। पाठकों को थावच्चापुत्र के विषय में जानने के लिए 'ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र' के पांचवें अध्ययन का अध्ययन करना चाहिए। धन्य अनगार का वर्णन इसी वर्ग के प्रथम अध्ययन में आ चुका है।

इस सूत्र में प्रारम्भ में ''उक्खेवओ–उत्क्षेपः'' पद आया है। उसका तात्पर्य यह है कि इसके साथ के पाठ का पिछले सूत्रों से आक्षेप कर लेना चाहिए अर्थात् उसके स्थान पर निम्नलिखित पाठ पढ़ना चाहिए—

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं नवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तच्चस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते नवमस्स णं भंते ! अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तच्चस्स वग्गस्स वितियस्स अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

इस प्रकार का पाठ प्रायः प्रत्येक अध्ययन के प्रारम्भ में आता है। इसे 'उक्खेवओ या उत्क्षेप' कहते हैं, जिसका आशय है भूमिका या प्रारम्भ। पाठ को संक्षिप्त करने के लिए यहाँ 'उक्खेवओ' पद दे दिया जाता है। दूसरे सूत्रों में भी इसी शैली का अनुसरण किया गया है।

जिस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर के पास दीक्षित होकर धन्य अनगार ने पारणा के दिन ही आचाम्लव्रत धारण किया था इसी प्रकार सुनक्षत्र अनगार ने भी किया। जिस प्रकार 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' के द्वितीय शतक में स्कन्दक अनगार ने श्रमण भगवान् के पास दीक्षित होकर तप द्वारा अपना शरीर कृश किया था, उसी प्रकार सुनक्षत्र अनगार का शरीर भी तप से कृश हो गया।

इस सूत्र से हमें यह शिक्षा मिलती है कि जब कोई अपना समीचीन लक्ष्य स्थिर कर ले तो उसकी प्राप्ति के लिए उसको सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए और दृढ़ संकल्प कर लेना चाहिए कि वह उस पद की प्राप्ति करने में बड़े से बड़े कष्ट को भी तुच्छ समझेगा और अपने प्रयत्न में कोई भी शिथिलता नहीं आने देगा। जब तक कोई ऐसा दृढ़ संकल्प नहीं करता तब तक वह लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता। किन्तु जो अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए एकाग्र चित्त से प्रयत्न करता है वह अवश्य और शीघ्र सफलता प्राप्त कर लेता है।

२०—तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। सामी समोसढे। परिसा निग्गया। राया निग्गओ। धम्मकहा। राया पडिगहो। परिसा पडिगया।

तए णं तस्स सुणक्खत्तस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्म-जागरियं जहा खंदयस्स। बहु वासा परियाओ। गोयम-पुच्छा। तहेव कहेइ जाव सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवत्ताए उववण्णे। तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई। से णं भंते ! जाव महाविदेहे सिज्झिहिइ।

उस काल और उस समय में राजगृह नाम का एक नगर था। गुणशिलक नामक चैत्य था। श्रेणिक राजा था। भगवान् महावीर पधारे। परिषदा निकली। राजा भी निकला। धर्मकथा हुई। राजा वापिस चला गया। परिषदा भी

वापिस चली गई।

सुनक्षत्र ने प्रव्रज्या अंगीकार की। अनन्तर सुनक्षत्र ने अन्य किसी समय मध्य रात्रि में धर्मजागरण करते हुए विचारणा की, जिस प्रकार स्कन्दक ने की थी। बहुत वर्षों तक संयम का पालन किया। गौतम की पृच्छा। यावत् सुनक्षत्र अनगार सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए। तेतीस सागरोपम की स्थिति हुई।

गौतम ने पूछा—"भगवन् ! वह सुनक्षत्रदेव देवलोक से च्यवन कर कहाँ पैदा होगा ?" यावत् "गौतम ! महाविदेहवर्ष से सिद्ध होगा।"

विवेचन—इस सूत्र में 'पूर्वरात्रापररात्रकाल' शब्द आया है जिसका अर्थ मध्यरात्रि है। यही समय एक ऐसा है जब वातावरण एकदम प्रशान्त रहता है। अतः धर्म-जागरण करने वालों का चित्त इस समय एकाग्र हो जाता है और उसमें पूर्ण स्थिरता विद्यमान होती है। ऐसे ही समय में विचारधारा बहुत स्वच्छ रहती है और मस्तिष्क में बहुत ऊँचे विचार उत्पन्न होते हैं। यही कारण है कि धन्य आदि अनगारों के उस समय के विचार उनको सन्मार्ग की ओर ले गये।



३-१० अध्ययन

इसिदास आदि

२१—एवं सुणक्खत्त-गमेणं सेसा वि अट्ठ भाणियव्वा। नवरं आणुपुव्वीए दोण्णि रायगिहे, दोण्णि साएए, दोण्णि वाणियग्गामे। नवमो हत्थिणापुरे। दसमो रायगिहे। नवण्हं भद्दाओ जणणीओ, नवण्हं वि बत्तीसओ दाओ। नवण्हं णिक्खमणं थावच्चापुत्तस्स सरिसं, वेहल्लस्स पिया करेइ (णिक्खमणं) छम्मासा वेहल्लए। नव धण्णे। सेसाणं बहू वासा। मासं संलेहणा। सव्वट्ठसिद्धे सव्वे महाविदेहे सिज्झिस्संति। एवं दस अज्झयणाणि।

इस प्रकार सुनक्षत्र की तरह शेष आठ कुमारों का वर्णन भी समझ लेना चाहिए। विशेष यह है कि अनुक्रम से दो राजगृह में, दो साकेत में, दो वाणिज्यग्राम में, नववाँ हस्तिनापुर में और दसवाँ राजगृह में उत्पन्न हुआ। नौ की जननी भद्रा थी। नौ को बत्तीस-बत्तीस का दहेज दिया गया। नौ का निष्क्रमण थावच्चापुत्र की तरह जानना चाहिए। वेहल्ल का निष्क्रमण उसके पिता ने किया। छह मास की दीक्षा पर्याय वेहल्ल की, नौ मास की दीक्षा पर्याय धन्य की रही। शेष की पर्याय बहुत वर्षो की रही। सबकी एक मास की संलेखना। सर्वार्थसिद्ध विमान में उपपात (जन्म)। सब महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध होंगे। इस प्रकार दस अध्ययन पूर्ण हुए।

विवेचन—यहाँ कहना केवल इतना ही है कि प्रस्तुत आगम में बार-बार स्कन्दक अनगार को उदाहरण-रूप में उपस्थित किया गया है। उनका वर्णन हमें कहाँ से प्राप्त हो ? तथा थावच्चापुत्र के विषय में भी यही कहा जा सकता है। उत्तर यह है कि प्रथम अर्थात् स्कन्दक मुनि का वर्णन पञ्चम अङ्ग भगवती के द्वितीय शतक मे आया है और थावच्चापुत्र का वर्णन छठे अङ्ग के पञ्चम अध्ययन में है। यह 'अनुत्तरौपपातिकसूत्र' नौवाँ अङ्ग है। अतः सूत्रकार ने उसी वर्णन को यहाँ पर दोहराना उंचित न समझ कर केवल दोनों का उल्लेखमात्र करके बात समाप्त कर दी है। पाठकों को इनके विषय में पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिए उक्त सूत्रों का अवश्य अध्ययन करना चाहिए। यहाँ श्री श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्म-कथा सुनने को जाना, वहाँ वैराग्य की उत्पत्ति, दीक्षामहोत्सव, परम उच्चकोटि का तपःकर्म, शरीर का कृश होना, उसी के कारण अर्धरात्रि में धर्मजागरण करते हुए अनशन व्रत की भावना का उत्पन्न होना, अनशन कर सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न होना, भविष्य में महाविदेहक्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धगति प्राप्त करना इत्यादि विषय का संक्षेप में कथन किया गया है।

निक्षेप

२२—एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सयंसंबुद्धेणं लोगणाहेणं लोगपदीवेणं लोगपज्जोयगरेणं अभयदएणं सरणदएणं चक्खुदएणं मग्गदएणं धम्मदएणं धम्म-देसएणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टिणा अप्पडिहय-वर-णाण-दंसणधरेणं जिणेणं जावएणं बुद्धेणं बोहएणं मुत्तेणं मोयएणं तिण्णेणं तारएणं, सिवं अयलं अरुयं अणंतं अक्खयं अव्वाबाहं अपुणरावत्तयं सिद्धिगइणामधेयं ठाणं

संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

आर्य सुधर्मा ने कहा—हे जम्बू ! धर्म की आदि करने वाले, धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले, स्वयं ही सम्यग् बोध को पाने वाले, लोक के नाथ, लोक में प्रदीप, लोक में प्रद्योत करने वाले, अभय देने वाले, शरण के दाता, नेत्र देने वाले, धर्म-मार्ग के दाता, धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के उत्तम आचरण द्वारा चार गति का अन्त करने वाले धर्मचक्रवर्ती, अप्रतिहत तथा श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन के धर्ता, स्वयं राग-द्वेष के विजेता, अन्यों को राग-द्वेष पर विजय दिलाने वाले, स्वयं बोध को पाने वाले तथा दूसरों को बोध देने वाले, स्वयं मुक्त तथा दूसरों को मुक्त करने वाले, स्वयं तिरे हुए तथा दूसरों को तारने वाले तथा उपद्रव रहित, अचल, रोग-रहित, अन्त-रहित, अक्षय, बाधा-रहित एवं पुनरागमन से रहित, सिद्धिगतिनामक स्थान को समीचीनता से प्राप्त करने वाले श्रमण भगवान् महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के तृतीय वर्ग का यह अर्थ कहा है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र उपसंहार-रूप है। इस सूत्र से सर्वप्रथम यही बोध मिलता है कि प्रत्येक शिष्य को देव-गुरु-धर्म के प्रति पूर्णरूप से अनुराग होना चाहिए और गुरु-भक्ति द्वारा सद्‌गुणों को प्रकट करना चाहिए। जैसे अन्तिम सूत्र में श्री सुधर्मास्वामी ने, उपसंहार करते हुए, श्रमण भगवान् महावीर के सद्‌गुणों को प्रकट किया है। वे अपने शिष्य जम्बू से कहते हैं कि हे जम्बू ! इस सूत्र को उन भगवान् ने प्रतिपादित किया है जो आदिकर हैं अर्थात् श्रुत-धर्म-सम्बन्धी शास्त्रों के अर्थप्रणेता हैं, तीर्थङ्कर हैं अर्थात् (तरन्ति येन संसारसागरमिति, तीर्थम्-प्रवचनम्, तदव्यतिरेकादिह सङ्घः तीर्थम्, तस्य करणशीलत्वात्तीर्थकरस्तेन) जिसके द्वारा लोग संसार रूपी सागर से पार हो जाते हैं उसको तीर्थ कहते हैं। वह तीर्थ भगवत्प्रवचन है और उससे अभिन्न होने के कारण संघ भी तीर्थ कहलाता है। उसकी स्थापना करने वाले महापुरुष ने ही इस सूत्र के अर्थ का प्रकाश किया है। यह प्रकट करके आगम की प्रामाणिकता प्रकट की है। इसी उद्देश्य से सुधर्मास्वामी भगवान् के 'नमोत्थु णं' में प्रदर्शित सब गुणों का दिग्दर्शन यहां कराते हैं। जब कोई व्यक्ति सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाता है, उस समय वह अनन्त और अनुपम गुणों का धारण करने वाला हो जाता है। उसके पथ का अनुसरण करने वाला भी एक दिन उसी रूप में परिणत हो सकता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को उनका अनुकरण यथाशक्ति अवश्य करना चाहिए। भगवान् हमें संसारसागर में अभय प्रदान करने वाले हैं और शरण देने वाले हैं अर्थात् (शरणम्-त्राणम्, अज्ञानोपहतानां तद्रक्षास्थानम्, तच्च परमार्थतो निर्वाणम्, तद्ददाति इति शरणदः) अज्ञान-विमूढ व्यक्तियों की एकमात्र रक्षा के स्थान निर्वाण को देने वाले हैं, जिसको प्राप्त कर आत्मा सिद्ध-पद में अपने प्रदेश में स्थित हो जाता है। भगवान् को 'अप्रतिहत-ज्ञान-दर्शन-धर' भी बताया गया है। उसका अभिप्राय यह है—

(अप्रतिहते कटकुड्यपर्वतादिभिरस्खलितेऽविसंवादके वा क्षायिकत्वाद् वरे-प्रधाने ज्ञान-दर्शने केवललक्षणे धारयतीति-अप्रतिहतवरज्ञान-दर्शनधरस्तेन) अर्थात् किसी प्रकार से भी स्खलित न होने वाले सर्वोत्तम केवलज्ञान और केवलदर्शन को धारण करने वाले सर्वज्ञ और सर्वदर्शी भगवान् की जव शुद्ध चित्त से भक्ति की जायेगी तो आत्मा अवश्य ही निर्वाण-पद प्राप्त कर तन्मय हो जायेगा। ध्यान रहे कि इस पद की प्राप्ति के लिए सम्यग्ज्ञान-दर्शन और चारित्र के सेवन की अत्यन्त आवश्यकता है। जव हम किसी व्यक्ति की भक्ति करते हैं तो हमारा ध्येय सदैव उसीके समान बनने का होना चाहिए। तभी हम उसमें सफल हो सकते हैं। पहले कहा जा चुका है कि कर्म ही संसार के कारण हैं। उनका क्षय करना मुमुक्षु का पहला ध्येय होना चाहिए। जब तक कर्म अवशिष्ट रहते हैं तब तक

निर्वाण-रूप अलौकिक पद की प्राप्ति नहीं हो सकती। उनका क्षय या तो विपाकानुभव (उपभोग) से होता है या तप रूपी अग्नि के द्वारा। उपभोग के ऊपर ही निर्भर रहा जाय तो उनका सर्वथा नाश कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उनके उपभोग के साथ-साथ नये-नये कर्म सञ्चित होते रहते हैं। अतः तपोऽग्नि से ही उनका क्षय करना चाहिए। अतः स्पष्ट है कि सम्यग्दर्शन के साथ-साथ सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का तथा विशेषतः तप का आसेवन आवश्यक है।

इस प्रकार ज्ञान और चारित्र की सहायता से धन्य अनगार और उनके समान अन्य महापुरुष या तो सम्पूर्ण कर्मो के क्षीण होने पर मुक्ति प्राप्त करते हैं अथवा कुछ कर्म शेष रह जाएँ और आयुष्य समाप्त हो जाए तो अनुत्तर विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं। जो इन विमानों में उत्पन्न होते हैं वे अवश्य ही एक-दो भवों में मोक्ष-गामी होते हैं। अतएव प्रस्तुत आगम में उन्हीं महान् व्यक्तियों का वर्णन किया गया है, जो उक्त विमानों में उत्पन्न हुए हैं।

इस सूत्र में अन्तिम शिक्षा यह प्राप्त होती है कि उक्त महर्षियों ने महाघोर तप करते हुए भी एकादशाङ्ग सूत्रों का अध्ययन किया। अतः प्रत्येक साधक को योग्यतापूर्वक शास्त्राध्ययन में प्रयत्नशील होना चाहिए, जिससे वह अनुक्रम से निर्वाण-पद की प्राप्ति कर सके।

परिशेष

अणुत्तरोववाइयदसाणं एगो सुयक्खंधो। तिण्णि वग्गा। तिसु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति। तत्थ पढमे वग्गे दस उद्देसगा। विइए वग्गे तेरस उद्देसगा। तइए वग्गे दस उद्देसगा। सेसं जहा नायाधम्मकहाणं तहा नेयव्वं।

अनुत्तरौपपातिकदशा का एक श्रुत-स्कन्ध है। तीन वर्ग हैं। तीन दिनों में उद्दिष्ट होता है—*अर्थात्* पढ़ाया जाता है। उसके प्रथम वर्ग में दश उद्देशक हैं, द्वितीय वर्ग में तेरह उद्देशक हैं, तृतीय वर्ग में दश उद्देशक हैं। शेष वर्णन जो प्रस्तुत अंग में साक्षात् रूप से नहीं कहा गया है, उसे ज्ञाताधर्मकथासूत्र के समान समझ लेना चाहिए।



परिशिष्ट

- टिप्पण
- कोष्ठक-प्रथम वर्ग, द्वितीय वर्ग एवं तृतीय वर्ग
- पारिभाषिक शब्द-कोष
- अव्यय-पद-संकलना
- क्रिया-पद-संकलना
- शब्दार्थ

टिप्पण

राजगृह

राजगृह, भारत का एक सुन्दर, समृद्ध और वैभवशाली नगर था। मगध जनपद की राजधानी तथा जैन-संस्कृति और बौद्ध-संस्कृति का मुख्य केन्द्र था। इस पुण्यधाम पावन नगर में भगवान् महावीर ने १४ वर्षावास किये थे तथा दो सौ से अधिक समवसरण हुए थे। हजारों-लाखों मानवों ने यहाँ पर भगवान् महावीर की वाणी श्रवण की थी और श्रावकधर्म तथा श्रमणधर्म स्वीकृत किया था। यह नगर प्राचीन युग में क्षितिप्रतिष्ठित नाम से प्रसिद्ध था, उसके क्षीण होने के बाद वहीं पर ऋषभपुर नगर बसा। उसके नष्ट होने पर कुशाग्रपुर नगर बसा। जब यह नगर भी जल गया तब राजा श्रेणिक के पिता राजा प्रसेनजित ने राजगृह बसाया, जो वर्तमान में "राजगिर" नाम से प्रसिद्ध है। इसका दूसरा नाम गिरिव्रज भी था, क्योंकि इसके आस-पास पाँच पर्वत हैं। राजगिर बिहार प्रान्त में पटना से पूर्व-दक्षिण और गया से पूर्वोत्तर में स्थित है। बौद्ध ग्रन्थों में भी राजगृह का बार-बार उल्लेख उपलब्ध होता है।

सुधर्मा

भगवान् महावीर के पंचम गणधर और जम्बूस्वामी के गुरु थे। उनका पूर्व परिचय इस प्रकार है— वे कोल्लाग संनिवेश के रहने वाले, अग्निवैश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम धम्मिल तथा माता का नाम भद्दिला था। वे वेद के प्रखर ज्ञाता और अनेक विद्याओं के परम विज्ञाता थे। पाँच-सौ शिष्यों के पूजनीय, वन्दनीय और आदरणीय गुरु थे। जन्मान्तर-सादृश्यवाद में उनको विश्वास था। "पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वम्" अर्थात् मरणोत्तर जीवन में पुरुष, पुरुष ही होता है और पशु, पशु रूप में ही जन्म लेता है। साथ ही सुधर्मा को वेदों में जन्मान्तर वैसादृश्यवाद के समर्थक वाक्य भी मिलते थे, जैसे— "शृगालो वै एष जायते, यः सपुरीषो दह्यते"। सुधर्मा दोनों प्रकार के परस्पर विरुद्ध वाक्यों से संशयग्रस्त हो गये थे।

भगवान् महावीर ने पूर्वापर वेद-वाक्यों का समन्वय करके जन्मान्तर-वैसादृश्य सिद्ध कर दिया। अपनी शंका का सम्यक् समाधान हो जाने पर सुधर्मा को भगवान् ने वेदवाक्यों से ही समझाया, उनकी भ्रान्ति का निवारण कर दिया। ५० वर्ष की आयु में उन्होंने दीक्षा ली, ४२ वर्ष तक वे छद्मस्थ रहे। महावीरनिर्वाण के १२ वर्ष बाद वे केवली हुए और १८ वर्ष केवली अवस्था में रहे।

गणधरों में सुधर्मास्वामी का पांचवाँ स्थान था। वे सभी गणधरों में दीर्घ-जीवी थे। अतः भगवान् ने तो उन्हें गण-समर्पण किया ही था किन्तु अन्य गणधरों ने भी अपने-अपने निर्वाण समय पर अपने-अपने गण सुधर्मास्वामी को समर्पित किए थे। आगम में प्रायः सर्वत्र सुधर्मा का उल्लेख मिलता है।

जम्बू

आर्य सुधर्मा के परम शिष्य तथा आर्य प्रभव के प्रतिबोधक। आगमों में प्रायः सर्वत्र जम्बू एक परम जिज्ञासु के रूप में प्रतीत होते हैं।

जम्बू राजगृह नगर के समृद्ध, वैभवशाली-इभ्य-सेठ के पुत्र थे। पिता का नाम ऋषभदत्त और माता का नाम धारिणी था। जम्बूकुमार की माता ने जम्बूकुमार के जन्म से पूर्व स्वप्न में जम्बूवृक्ष देखा था, अतः पुत्र का नाम

जम्बूकुमार रखा।

सुधर्मास्वामी की दिव्य वाणी से जम्बूकुमार के मन में वैराग्य जागा। अनासक्त जम्बू को माता-पिता के अत्यन्त आग्रह से विवाह स्वीकृत करना पड़ा और आठ इभ्य-वर सेठों की कन्याओं के साथ विवाह करना पड़ा।

विवाह की प्रथम रात्रि में जम्बूकुमार अपनी आठ नव विवाहिता पत्नियों को प्रतिबोध दे रहे थे। उस समय एक चोर चोरी करने को आया। उसका नाम प्रभव था। जम्बूकुमार की वैराग्यपूर्ण वाणी श्रवण कर वह भी प्रतिबुद्ध हो गया।

५०१ चोर, ८ पत्नियाँ, पत्नियों के १६ माता-पिता, स्वयं के २ माता-पिता और स्वयं जम्बूकुमार—इस प्रकार ५२८ ने एक साथ सुधर्मा के पास दीक्षा ग्रहण की।

जम्बूकुमार १६ वर्ष गृहस्थ में रहे, २० वर्ष छद्मस्थ रहे, ४४ वर्ष केवली पर्याय में रहे। ८० वर्ष की आयु भोग कर जम्बूस्वामी अपने पाट पर प्रभव को स्थापित कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए। इस अवसर्पिणी काल के यही अन्तिम केवली थे।

अंग

साक्षात् जिनभाषित एवं गणधर-निबद्ध जैन सूत्र-साहित्य अंग कहलाता है। आचारांग से लेकर विपाकश्रुत तक के ग्यारह अंग तो अभी तक भी विद्यमान हैं, परन्तु वर्तमान में बारहवाँ अंग अनुपलब्ध है, जिसका नाम 'दृष्टिवाद' है। 'दृष्टिवाद'-चतुर्दश पूर्वधर आचार्य भद्रबाहु तथा दश पूर्वधर वज्रस्वामी के बाद में सारा पूर्व साहित्य अर्थात् सारा 'दृष्टिवाद' विच्छिन्न हो गया।

अन्तकृद्दशा

यह आठवाँ अंग-सूत्र है, जिसमें अपनी आत्मा का अधिकाधिक विकास करके अपने वर्तमान जीवनकाल में ही सम्पूर्ण आत्म-सिद्धि का लाभ पाने वाले और अन्ततः मुक्त होने वाले साधकों की जीवन-चर्या का तपोमय सुन्दर वर्णन है।

अनुत्तरौपपातिकदशा

यह नवम अंग-सूत्र है, जिसमें तेतीस महापुरुषों की तपोमय जीवन-चर्या का सुन्दर वर्णन है। धन्य अनगार की महती तपोमयी साधना का सांगोपांग वर्णन है। इसमें वर्णित पुरुष अनुत्तरौपपाती हुए हैं, अर्थात् विजयादि अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए हैं और भविष्य में एक भव अर्थात्—मनुष्य-भव पाकर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होंगे।

गुणशिलक (गुणशील) चैत्य

राजगृह नगर के बाहर ईशानकोण में एक चैत्य (उद्यान) था।

राजगृह के बाहर अन्य बहुत से उद्यान होंगे, परन्तु भगवान् महावीर गुणशिलक उद्यान में ही विराजित होते थे।

यहाँ पर भगवान् के समक्ष सैकड़ों श्रमण और श्रमणियाँ तथा हजारों श्रावक-श्राविकाएँ वनी थीं। वर्तमान में 'गुणावा' जो नवादा स्टेशन से लगभग तीन मील पर है, प्राचीन काल का यही गुणशिलक चैत्य माना जाता है।

श्रेणिक राजा

मगध देश का सम्राट् था। अनाथी मुनि से प्रतिबोधित होकर भगवान् महावीर का परम भक्त हो गया था। ऐसी एक जन-श्रुति है।

राजा श्रेणिक का वर्णन जैन ग्रन्थों तथा बौद्ध ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में मिलता है।

इतिहासकार कहते हैं कि श्रेणिक राजा हैहय कुल और शिशुनाग वंश का था।

बौद्ध ग्रन्थों में 'सेनिय' और 'बिंविसार' ये दो नाम मिलते हैं। जैन ग्रन्थों में सेणिय, भिंभसार और भंभासार नाम उपलब्ध हैं।

भिंभसार और भंभासार नाम कैसे पड़ा ? इस सम्बन्ध में श्रेणिक के जीवन का एक सुन्दर प्रसंग है—

श्रेणिक के पिता राजा प्रसेनजित कुशाग्रपुर में राज्य करते थे। एक दिन की बात है, राजप्रासाद में सहसा आग लग गई। हर एक राजकुमार अपनी-अपनी प्रिय वस्तु लेकर बाहर भागा। कोई गज लेकर, तो कोई अश्व लेकर, कोई रत्नमणि लेकर। परन्तु श्रेणिक मात्र एक 'भंभा' लेकर ही बाहर निकला था।

श्रेणिक को देखकर दूसरे भाई हँस रहे थे, पर पिता प्रसेनजित प्रसन्न था, क्योंकि श्रेणिक ने अन्य सब कुछ छोड़कर एकमात्र राज्यचिह्न की रक्षा की थी।

इस पर राजा प्रसेनजित ने उसका नाम 'भिंभसार', या 'भंभासार' रखा। भिंभसार शब्द ही संभवतः आगे चलकर उच्चारण-भेद से बिंबसार बन गया।

धारिणी देवी

श्रेणिक राजा की पटरानी थी। धारिणी का उल्लेख आगमों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

संस्कृत साहित्य के नाटकों में प्रायः राजा की सबसे बड़ी रानी के नाम के आगे 'देवी' विशेषण लगाया जाता है, जिसका अर्थ होता है—रानियों में सबसे बड़ी अभिषिक्त रानी, अर्थात्—पटरानी।

राजा श्रेणिक की अनेक रानियाँ थी, उनमें धारिणी मुख्य थी। इसीलिए धारिणी के आगे 'देवी' विशेषण लगाया जाता है। देवी का अर्थ है—पूज्या।

मेघकुमार इसी धारिणी देवी का पुत्र था, जिसने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

सिंह-स्वप्न

किसी महापुरुष के गर्भ में आने पर उसकी माता कोई श्रेष्ठ स्वप्न देखती है। इस प्रकार का वर्णन भारतीय साहित्य में भरा पड़ा है। जैन साहित्य में और बौद्ध साहित्य में इस प्रकार के वर्णन प्रचुर मात्रा में हैं।

बुद्ध की माता मायादेवी ने बुद्ध के गर्भ में आने पर रजत-राशि जैसा षड्दन्त गज देखा था।

तीर्थकर एवं चक्रवर्ती की माता १४ महास्वप्न देखती है। वासुदेव की माता १४ में से कोई भी सात स्वप्न देखती है। बलदेव की माता कोई चार स्वप्न देखती है। इसी प्रकार माण्डलिक राजा की माता एक महास्वप्न देखती है।

सिंह का स्वप्न वीरतासूचक और मंगलमय माना है।

मेघकुमार

मगध-सम्राट् श्रेणिक और धारिणी देवी का पुत्र था, जिसने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

एक बार भगवान् महावीर राजगृह के गुणशिलक उद्यान में पधारे। मेघकुमार ने भी उपदेश सुना। माता-पि से अनुमति लेकर भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की।

जिस दिन दीक्षा ग्रहण की उसी रात को मुनियों के यातायात से, पैरों की रज और ठोकर लगने से मेघमु व्याकुल हो गए।

भगवान् ने उन्हें पूर्वभवों का स्मरण कराते हुए संयम में धृति रखने का उपदेश दिया, जिससे मेघमुनि संय में स्थिर हो गए।

एक मास की संलेखना की। सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए। महाविदेहवास से सिद्ध होंगे।

–ज्ञातासूत्र, अध्ययन

स्कन्दक

स्कन्दक संन्यासी श्रावस्ती नगरी के रहने वाले गद्दभालि परिव्राजक के शिष्य और गौतम स्वामी के पूर्व मि थे। भगवान् महावीर के शिष्य पिंगलक निर्ग्रन्थ के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सके; फलतः श्रावस्ती के लोगों से जब सुना कि भगवान् महावीर यहाँ पधारे हैं तो उनके पास जा पहुँचे। समाधान मिलने पर वह भगवान् के शिष्य हो गए

स्कन्दक मुनि ने स्थविरों के पास रहकर ११ अंगों का अध्ययन किया। भिक्षु की १२ प्रतिमाओं की क्रम से साधना की, आराधना की। गुणरत्नसंवत्सर तप किया। शरीर दुर्बल, क्षीण और अशक्त हो गया। अन्त में राजगृह के समीप विपुलगिरि पर जाकर एक मास की संलेखना की। काल करके १२वें देवलोक में गए। महाविदेहवास से सिद्ध होंगे।

स्कन्दक मुनि की दीक्षा पर्याय १२ वर्ष की थी। —भगवती, शतक २, उद्देशक १

गौतम (इन्द्रभूति)

आपका मूल नाम इन्द्रभूति है, परन्तु गोत्रतः गौतम नाम से आबाल-वृद्ध प्रसिद्ध हैं।

गौतम, भगवान महावीर के सबसे बड़े शिष्य थे। भगवान् के पास धर्म-शासन के यह कुशल शास्ता थे, प्रथम गणधर थे।

मगध देश के गोवर ग्राम के रहने वाले, गौतम गोत्रीय ब्राह्मण वसुभूति के यह ज्येष्ठ पुत्र थे। इनकी माता का नाम पृथिवी था।

इन्द्रभूति वैदिक धर्म के प्रखर विद्वान् थे, गंभीर विचारक थे, महान् तत्त्ववेत्ता थे।

एक बार इन्द्रभूति आर्य सोमिल के निमन्त्रण पर पावापुरी में होने वाले यज्ञोत्सव में गए थे। उसी अवसर पर भगवान् महावीर भी पावापुरी के बाहर महासेन उद्यान में पधारे हुए थे। भगवान् की महिमा को देखकर इन्द्रभूति उन्हें पराजित करने की भावना से भगवान् के समवसरण में आये। किन्तु वे स्वयं ही पराजित हो गए। अपने मन का संशय दूर हो जाने पर वे अपने पांच-सौ शिष्यों सहित भगवान् के शिष्य हो गए। गौतम प्रथम गणधर हुये।

आगमों में और आगमोत्तर साहित्य में गौतम के जीवन के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा मिलता है।

इन्द्रभूति गौतम दीक्षा के समय ५० वर्ष के थे। ३० वर्ष साधु पर्याय में और १२ वर्ष केवली पर्याय में रहे। अपने निर्वाण के समय अपना गण सुधर्मा को सौंपकर गुणशिलक चैत्य में मासिक अनशन करके भगवान् के निर्वाण से १२ वर्ष बाद ९२ वर्ष की अवस्था में निर्वाण को प्राप्त हुए।

शास्त्रों में गणधर गौतम का परिचय इस प्रकार का दिया गया है। वे भगवान् के ज्येष्ठ शिष्य थे। सात हाथ ऊँचे थे। उनके शरीर का संस्थान और संहनन उत्कृष्ट प्रकार का था। सुवर्ण-रेखा के समान गौर वर्ण थे। उग्रतपस्वी, महातपस्वी, घोरतपस्वी, घोरब्रह्मचारी और विपुल तेजोलेश्या से सम्पन्न थे। शरीर में अनासक्त थे। चौदह पूर्वधर थे। मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्याय—चार ज्ञान के धारक थे। सर्वाक्षरसन्निपाती थे। वे भगवान् महावीर के समीप में उक्कुड आसन से नीचा सिर करके बैठते थे। ध्यानमुद्रा में स्थिर रहते हुए, संयम और तप से आत्मा को भावित करते विचरते थे।

गणधर गौतम के जीवन की एक विशिष्ट घटना का उल्लेख इस प्रकार है—

उपासकदशांग में वर्णन है कि जब आनन्द श्रावक ने अपने को अमुक मर्यादा तक के अवधिज्ञान प्राप्ति की बात उनसे कही तो उन्होंने कहा—इतनी मर्यादा तक का अवधिज्ञान श्रावक को नहीं हो सकता। तब आनन्द ने कहा—मुझे इतना स्पष्ट दिख रहा है। अतः मेरा कथन सद्भूत है। यह सुनकर गणधर गौतम शंकित हो गए और अपनी शंका का निवारण करने के लिए भगवान् के पास पहुँचे। भगवान् ने आनन्द की बात को सही बताया और आनन्द श्रावक से क्षमापना करने को कहा। गौतमस्वामी ने आनन्द के समीप जाकर क्षमायाचना की।

विपाकसूत्र में मृगापुत्र राजकुमार का जीवन वर्णित है। उसमें उसे भयंकर रोगग्रस्त कहा गया है। उसके शरीर से असह्य दुर्गन्ध आती थी, जिससे उसे तलघर में रखा जाता था। एक बार गणधर गौतम मृगापुत्र को देखने गए। उसकी बीभत्स रुग्ण अवस्था देखकर चार ज्ञान के धारक, चतुर्दशपूर्वी और द्वादशांग वाणी के प्रणेता गणधर गौतम ने कहा—''मैंने नरक तो नहीं देखे, किन्तु यही नरक है।'' —विपाकसूत्र

गौतम के सम्बन्ध में एक और घटना प्रचलित है, जिसका उल्लेख मूल में तो नहीं, किन्तु उत्तरकालीन साहित्य में है।

उत्तराध्ययनसूत्र के १०वें अध्ययन की निर्युक्ति में भगवान् महावीर के मुख से इस प्रकार कहलवाया गया है —''अष्टापद सिद्धपर्वत है, अतः जो चरम शरीरी है, वही उस पर चढ़ सकता है, दूसरा नहीं,'' भगवान् का उक्त कथन सुनकर जब देव समवसरण से बाहर निकले, तब 'अष्टापद सिद्धपर्वत है' ऐसी आपस में चर्चा कर रहे थे। गौतम गणधर ने देवों की यह बातचीत सुनी। गणधर गौतम द्वारा प्रतिबोधित शिष्यों को केवलज्ञान हो जाता था, पर गौतम को नहीं होता था, इससे गौतम खिन्न हो गए। तब भगवान् ने कहा—''गौतम ! मेरे शरीर त्याग के पश्चात् मैं और तुम समान हो जाएंगे। तू अधीर मत बन।''

इस प्रकार भगवान् के कहने पर गौतम को संतुष्टि न हुई, अधृति बनी ही रही। भगवान् की उक्त बात सुनने पर भी गणधर गौतम अष्टापद पर गए और जब वहाँ से लौटकर भगवान् के पास आए, तव भगवान् ने कहा—

''किं देवाणं वयणं गिज्झं अहवा जिणवराणं ?''

अर्थात् देवों का वचन मान्य है, अथवा जिनवरों का ?

भगवान् के इस कथन को सुनकर गौतम ने अपने आचरण के लिए क्षमा मांगी। —पाइय टीका, पृ. ३२३

उत्तराध्ययन के टीकाकार आचार्य नेमिचन्द्र ने भी गौतम की अष्टापद-सम्बन्धी उक्त कथा का अवतरण लिया है। उसमें लिखा है —''तत्थ गोयमसामिस्स सम्मत्तमोहणीयकम्मोदयवसेण चिंता जाया 'मा णं न सेज्झिज्जामि' त्ति''।

—नेमिचन्द्र टीका, पृ. १५४

भगवान् के निश्चित आश्वासन देने पर भी गणधर गौतम को सम्यक्त्वमोहनीय कर्म के उदय से इस प्रकार की चिन्ता हो गई थी कि कदाचित् मैं सिद्धपद न पा सकूंगा। उक्त चिन्ता के निवारण के लिए वे अष्टापद पर गए।

गणधर गौतम के जीवन-सम्बन्ध में अनेक वर्णन उपलब्ध हैं। विद्वान् विचारकों एवं संशोधकों को उक्त प्रसंगों के तथ्यातथ्य का ऐतिहासिक दृष्टि से अनुसंधान करना चाहिए।

कुछ भी हो किन्तु यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि इन्द्रभूति गौतम सत्य के महान् शोधक थे। अपना सब कुछ भूलकर वह भगवान् के चरणों में ही सर्वतोभाव से समर्पित हो गए थे।

चेल्लणा

राजा श्रेणिक की रानी और वैशाली के अधिपति चेटक राजा की पुत्री।

चेल्लणा सुन्दरी, गुणवती, बुद्धिमती, धर्मप्राणा नारी थी। श्रेणिक राजा को धार्मिक बनाने में—जैनधर्म के प्रति अनुरक्त करने में चेल्लणा का बहुत बड़ा योग था।

चेल्लणा का राजा श्रेणिक के प्रति कितना प्रगाढ़ अनुराग था इसका प्रमाण "निरयावलिका" में मिलता है। कोणिक, हल्ल और विहल्ल —ये तीनों चेल्लणा के पुत्र थे।

—जैनागमकथाकोष

नन्दा

श्रेणिक की रानी थी। उसने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की। ११ अंगों का अध्ययन किया। २० वर्ष तक संयम का पालन किया। अन्त में संथारा करके मोक्ष प्राप्त किया।

विपुलगिरि

राजगृह नगर के समीप का एक पर्वत। आगमों में अनेक स्थलों पर इसका उल्लेख मिलता है। बहुत से साधकों ने यहाँ पर संलेखना व संथारा किया था। स्थविरों की देखरेख में घोर तपस्वी यहाँ आकर संलेखना करते थे।

जैन ग्रन्थों में इन पाँच पर्वतों का उल्लेख मिलता है—

१. वैभारगिरि
२. विपुलगिरि
३. उदयगिरि
४. सुवर्णगिरि
५. रत्नगिरि

महाभारत में पांच पर्वतों के नाम ये हैं—वैभार, वाराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक।

वायुपुराण में भी पांच पर्वतों का उल्लेख मिलता है। जैसे—वैभार, विपुल, रत्नकूट, गिरिव्रज और रत्नाचल।

भगवतीसूत्र के शतक २, उद्देश ५ में राजगृह के वैभारपर्वत के नीचे महातपोपतीरप्रभव नाम के उष्णजल प्रस्रवण—निर्झर का उल्लेख है, जो आज भी विद्यमान है।

बौद्ध ग्रन्थों में इस निर्झर का नाम 'तपोद' मिलता है, जो सम्भवतः 'तप्तोदक' से बना होगा।

चीनी यात्री फाहियान ने भी इसको देखा था।

उक्कमेणं सेसा : उत्क्रमेण शेषा

"अनुक्रम और उत्क्रम"। अनुक्रम का अर्थ है, नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः बढ़ना, तथा उत्क्रम का अर्थ है ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः उतरना। अनुक्रम को (In Serial Order) कहते हैं तथा उत्क्रम को (In the Upward Order) कहते हैं।

अनुत्तरौपपातिकदशा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में दश कुमारों के देवलोक सम्बन्धी उपपात=जन्म (Rebirth) वर्णन किया गया है, जो इस प्रकार है—

जालि, मयालि, उपजालि, पुरुषसेन तथा वारिषेण अनुक्रम से — विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध मे उत्पन्न हुए।

दीर्घदन्त सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न हुआ।

शेष चार उत्क्रम से उत्पन्न हुए, जैसे कि अपराजित में लष्टदन्त, जयन्त में बेहल्ल, वैजयन्त में वेहायस, विजय में अभय।

उक्त दश कुमारों के सम्बन्ध में शेष वर्णन प्रथम अध्ययन में वर्णित जालिकुमार के वर्णन के समान समझ लेना चाहिए।

लट्ठदन्त

इस नाम का उल्लेख प्रथम वर्ग में भी आ चुका है। वहाँ माता धारिणी तथा पिता श्रेणिक हैं और उपपात जयंतविमान में बताया है। द्वितीय वर्ग में भी लट्ठदन्त नाम का उल्लेख आता है और वहाँ भी माता धारिणी तथा पिता श्रेणिक ही हैं तथा उपपात वैजयन्त विमान में बताया है। प्रश्न होता है, कि क्या यह लट्ठदन्त एक ही व्यक्ति का नाम है या भिन्न व्यक्तियों का एक ही नाम है ? एक व्यक्ति का नाम होने पर किसी भी तरह संगति नहीं बैठ सकती। एक व्यक्ति का अलग-अलग उपपात नहीं हो सकता और संख्या प्रथम वर्ग की १० और इस वर्ग की १३ दोनों मिलकर २३ होनी चाहिए, यह भी एक व्यक्ति मानने पर कैसे हो सकता है ? 'श्रमण भगवान् महावीर' के लेखक पुरातत्त्ववेत्ता आचार्य कल्याणविजयजी ने अपनी उक्त पुस्तक के पृ. ९३ पर तीर्थकर जीवन वाले प्रकरण में लिखा है — "श्रेणिक की उपर्युक्त घोषणा का बड़ा सुन्दर प्रभाव पड़ा। अन्यान्य नागरिकों के अतिरिक्त जालिकुमार, मयालि, उपयालि, पुरुषसेन, वारिषेण, दीर्घदन्त, लष्टदन्त, वेहल्ल, वेहायस, अभय, दीर्घसेन, महासेन, लष्टदन्त, गूढदन्त, शुद्धदन्त, हल्ल, द्रुम, द्रुमसेन, महाद्रुमसेन, सिंह, सिंहसेन, महासिंहसेन तथा पूर्णसेन—श्रेणिक के इन तेईस पुत्रों और नन्दा, नन्दामती, नन्दोत्तरा, नन्दसेणिया, मरुया, सुमरुता, महामरुता, मरुदेवा, भद्रा, सुभद्रा, सुजाता, सुमना और भूतदत्ता नाम की श्रेणिक की तेरह रानियों ने प्रव्रजित होकर भगवान् महावीर के श्रमणसंघ में प्रवेश किया।" अस्तु विभिन्न स्थलों पर आया लष्टदन्त नाम किसी एक व्यक्ति का न होकर भिन्न व्यक्ति का होने से ही सूत्रोक्त उल्लेख संगति पा सकता है।

इस सम्बन्ध में विशेष गम्भीरता से सोचने पर जो संगति मालूम हुई है, वह इस प्रकार है—

प्राकृत शब्द के संस्कृत में भिन्न-भिन्न उच्चारण हो सकते हैं : जैसे 'कय' का संस्कृतरूपान्तर [illegible], [illegible], कृत। 'कइ' का कपि, कवि। 'पुण्ण' का पुण्य अथवा पूर्ण। इसी प्रकार 'लट्ठदन्त' शब्द के भिन्न-भिन्न उच्चारण होना असंगत नहीं। जैसे कि लष्टदन्त एवं राष्ट्रदन्त। लष्टदन्त का अर्थ है — मनोहर दांत वाला। दूसरे [illegible]

राष्ट्रदन्त का अर्थ है, जिसने राष्ट्र का दमन किया हुआ है अर्थात् जिसने राष्ट्र—देश को अपने वश में किया हुआ है। एक नाम 'पुण्णसेण' भी आता है, जिस प्रकार उसके पुण्यसेन अथवा पूर्णसेन ऐसे दो उच्चारण असंगत नहीं, इसी प्रकार प्रस्तुत प्रथम वर्ग में और द्वितीय वर्ग में आए हुए 'लट्ठदन्त' तथा 'राष्ट्रदन्त' ऐसे भिन्न-भिन्न उच्चारण असंगत नहीं। इस प्रकार विचार करने से लट्ठदन्त नाम के दो व्यक्तियों की सम्भावना की जा सकती है और इसी तरह से २३ की संख्या में संगति हो सकती है।

इसके सम्बन्ध में एक दूसरी युक्ति भी है, वह यह है—

पिता का नाम तो एक श्रेणिक ही ठीक है, परन्तु माताएँ इन दोनों की अलग-अलग हो सकती हैं। यद्यपि दोनों की माता का नाम धारिणी मूलपाठ में दिया हुआ है, परन्तु ये धारिणी नाम वाली दो रानियाँ भी हो सकती हैं। श्रेणिक राजा के कई रानियाँ थीं यह तो निर्विवाद है, तो दो रानियों का समान नाम भी होना असंभव नहीं। वर्तमान में भी कई कुटुम्बों में ऐसा होना बहुत सम्भवित है। हमारे एक परिचित पंजाबी जैन घराने में दो भाईयों की पत्नियों का एक ही नाम 'निर्मला' है, तब एक बड़ी निर्मला और एक छोटी निर्मला ऐसा विभाग करके व्यवहार चलाया जाता है। इसी प्रकार राजा श्रेणिक के समान नाम वाली दो रानियाँ मान लेने से प्रथम वर्ग के लट्ठदन्त की माता धारिणी थी और द्वितीय वर्ग के लट्ठदन्त की माता कोई दूसरी धारिणी थी, ऐसा समझ लेने पर एक जैसा नाम पुत्रों का हो और माताएं अलग-अलग हों यह समाधान भी असंगत नहीं बल्कि संगत और संभव है। अथवा एक धारिणी के ही लट्ठदंत नाम के दो पुत्र हो सकते हैं। तात्पर्य यह कि किसी भी प्रकार से दो लट्ठदन्त होने चाहिए।

विशेषज्ञ इस सम्बन्ध में अन्य कोई समाधान उपस्थित करेंगे तो उसका स्वागत होगा।

गुणसिलए : गुण-शिलक

'गुण-शिलक' शब्द में शिलक का 'शि' ह्रस्व है, यह ध्यान में रहे। 'गुणशिल' अथवा 'गुण-शिलक' शब्द का अर्थ इस प्रकार होना चाहिए—

'गुणप्रधानं शिलं यत्र तत् गुणशिलकम्'। 'शिल' अर्थात् खेत में पड़े हुए अनाज के कणों को — दानों को — एकत्रित करना।

जो लोग त्यागी, भिक्षु, मुनि और संन्यासी होते हैं, उनमें कुछ ऐसे भी होते हैं कि वे अनाज के जो दाने खेत में स्वतः गिरे हुए मिलते हैं, उनको ही एकत्रित करके अपनी आजीविका चलाते रहते है।

इस प्रकार की चर्या से साधु संन्यासी का बोझ समाज पर कम पड़ता है। गुण प्रधान शिल जहाँ मिलता हो वह 'गुण-शिलक' है। शिल के द्वारा जीवन चलाने का नाम ऋत है।

शिल द्वारा अपना जीवन व्यतीत करने वाले 'कणाद' नाम के एक ऋषि हो गए हैं। उनका 'कणाद' नाम, 'कणों को — अनाज के दानों को—एकत्रित करके, 'अद' खानेवाला यथार्थ है।

'उञ्छं शिलं तु ऋतम्' — अमर कोश, १९ वैश्य वर्ग, काण्ड २, श्लोक २ ।

'कणिशाद्यजैनं शिलम्, ऋत तत्' — अभिधान, मर्त्यका०, श्लोक ८६५-८६६ ।

'गुणसिल' शब्द की दूसरी व्युत्पत्ति इस प्रकार भी की जा सकती है— 'गुणाः शिरसि यस्य यस्मिन् वा तत् गुणशिरः।' इसका प्राकृत रूप गुणसिल सहज सिद्ध है। 'गुणशील' शब्द भी इस उद्यान के लिए प्रयुक्त होता है। उद्यान के गुणों के सदा विद्यमान रहने के कारण उसे 'गुणशील' भी कहा जाता है।

काकन्दी

जितशत्रु राजा की राजधानी और घोर तपस्वी धन्य अनगार की जन्मभूमि।

यह उत्तर भारत की प्राचीन और प्रसिद्ध नगरी थी। भगवान् महावीर के समय में इस नगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था।

काकन्दी नगरी के बाहर 'सहस्राम्रवन' नाम का एक सुन्दर उद्यान था। भगवान् का समवसरण यहीं पर लगा था। धन्य अनगार की दीक्षा भी इसी उद्यान में हुई थी।

वर्तमान में गोरखपुर से दक्षिण-पूर्व तीस मील पर नूनखार स्टेशन से दो मील पर कहीं काकन्दी रही होगी।

सहस्संबवण

सहस्राम्रवन। आगमों में इस उद्यान का प्रचुर उल्लेख मिलता है। काकन्दी नगरी के बाहर भी इसी नाम का एक सुन्दर उद्यान था, जहाँ पर धन्यकुमार और सुनक्षत्रकुमार की दीक्षा हुई थी।

सहस्राम्रवन का उल्लेख निम्नलिखित नगरों के बाहर भी आता है—

१. काकन्दी के बाहर।
२. गिरनार पर्वत पर।
३. काम्पिल्य नगर के बाहर।
४. पाण्डु मथुरा के बाहर।
५. मिथिला नगरी के बाहर।
६. हस्तिनापुर के बाहर आदि।

जितशत्रु राजा

शत्रु को जीतने वाला। जिस प्रकार बौद्ध जातकों में प्रायः ब्रह्मदत्त राजा का नाम आता है, उसी प्रकार जैन-ग्रन्थो मे प्रायः जितशत्रु राजा का नाम आता है। जितशत्रु के साथ प्रायः धारिणी का भी नाम आता है। किसी भी कथा के प्रारम्भ में किसी न किसी राजा का नाम बतलाना कथाकारों की पुरातन पद्धति रही है।

इस नाम का भले ही कोई राजा न भी हो, तथापि कथाकार अपनी कथा के प्रारम्भ में इस नाम का उपयोग करता है। वैसे जैन साहित्य के कथा-ग्रन्थों में जितशत्रु राजा का उल्लेख बहुत आता है। निम्नलिखित नगरों के राजा का नाम जितशत्रु बताया गया है—

	नगर	राजा
१.	वाणिज्यग्राम	जितशत्रु
२.	चम्पा नगरी	जितशत्रु
३.	उज्जयनी	जितशत्रु
४.	सर्वतोभद्र नगर	जितशत्रु
५.	मिथिला नगरी	जितशत्रु
६.	पांचाल देश	जितशत्रु
७.	आमलकल्पा नगरी	जितशत्रु

८.	सावत्थी नगरी	जितशत्रु
९.	वाणारसी नगरी	जितशत्रु
१०.	आलभिया नगरी	जितशत्रु
११.	पोलासपुर	जितशत्रु

भद्रा सार्थवाही

काकन्दी नगरी के वासी धन्यकुमार और सुनक्षत्रकुमार की माता।

काकन्दी नगरी में भद्रा सार्थवाही का बहुमान था। भद्रा के पति का उल्लेख नहीं मिलता।

भद्रा के साथ लगा सार्थवाही विशेषण यह सिद्ध करता है कि वह साधारण व्यापार ही नहीं अपितु सार्वजनिक कार्यों में भी महत्त्वपूर्ण भाग लेती होगी और देश तथा परदेश में बड़े पैमाने पर व्यापार करती रही होगी।

पंचधात्री

शिशु का लालन-पालन करने वाली पांच प्रकार की धाय माताएं।

शिशु-पालन भी मानवजीवन की एक कला है। एक महान् दायित्व भी है। किसी शिशु को जन्म देने मात्र से ही माता-पिता का गौरव नहीं होता। माता-पिता का वास्तविक गौरव शिशु के लालन-पालन की पद्धति से ही आंका जा सकता है।

प्राचीन साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में राजघरानों में और सम्पन्न घरों में शिशु-पालन के लिए धाय माताएं रखी जाती थीं, जिन्हें धात्री कहा जाता था। धाय माताएं पाँच प्रकार की हुआ करती थीं—

१. धीरधात्री — दूध पिलाने वाली।

२. मज्जनधात्री — स्नान कराने वाली।

३. मण्डनधात्री — साज-सिंगार कराने वाली।

४. क्रीडाधात्री — खेल-कूद कराने वाली, मनोरंजन कराने वाली।

५. अंकधात्री — गोद में रखने वाली।

महाबल

बल राजा का पुत्र। सुदर्शन सेठ का जीव महाबलकुमार। हस्तिनापुर नामक नगर का राजा बल और रानी प्रभावती थी। एक बार रात में अर्धनिद्रा में रानी ने देखा 'एक सिंह आकाश से उतर कर मुख में प्रवेश कर रहा है।' सिंह का स्वप्न देखकर रानी जाग उठी और राजा बल के शयनकक्ष में जाकर स्वप्न सुनाया। राजा ने मधुर स्वर में कहा — "स्वप्न बहुत अच्छा है। तेजस्वी पुत्र की तुम माता बनोगी।" प्रातः राजसभा में राजा ने स्वप्न-पाठकों से स्वप्न का फल पूछा। स्वप्न-पाठकों ने कहा — "राजन् ! स्वप्नशास्त्र में ४२ सामान्य और ३० महास्वप्न है, इस प्रकार कुल ७२ स्वप्न कहे हैं।"

तीर्थकरमाता और चक्रवर्तीमाता ३० महास्वप्नों में से इन १४ स्वप्नों को देखती हैं —

१. गज

२. वृषभ

३. सिंह
४. लक्ष्मी
५. पुष्पमाला
६. चन्द्र
७. सूर्य
८. ध्वजा
९. कुम्भ
१०. पद्मसरोवर
११. समुद्र
१२. विमान
१३. रत्नराशि
१४. निर्धूम अग्नि

राजन् ! प्रभावती देवी ने एक महास्वप्न देखा है। अतः इसका फल अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ और राज्यलाभ होगा।

कालान्तर में पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम महाबलकुमार रखा गया।

कलाचार्य के पास ७२ कलाओं का अभ्यास करके महाबल कुशल हो गया।

आठ राजकन्याओं के साथ महाबलकुमार का विवाह किया गया। महाबलकुमार भौतिक सुखों में लीन हो गया।

भगवान् का उपदेश श्रवण कर दीक्षित हो मुनिधर्म अंगीकार किया। तत्पश्चात् महाबल मुनि ने १४ पूर्वो का अध्ययन किया। अनेक प्रकार का तप किया। १२ वर्ष श्रमणपर्याय पालकर, ब्रह्मलोक कल्प में देव रूप में जन्म हुआ।

—भगवती, शतक ११, उद्देश ११

कोणिक

राजा श्रेणिक की रानी चेल्लणा का पुत्र, अंगदेश की राजधानी चम्पानगरी का अधिपति, भगवान् महावीर का परम भक्त।

कोणिक राजा एक प्रसिद्ध राजा है। जैनागमों में अनेक स्थानों पर उसका अनेक प्रकार से वर्णन मिलता है।

भगवती, औपपातिक और निरयावलिका में कोणिक का विस्तृत वर्णन है।

राज्यलोभ के कारण इसने अपने पिता श्रेणिक को कैद में डाल दिया था। श्रेणिक की मृत्यु के वाद कोणिक ने अंगदेश में चम्पानगरी को अपनी राजधानी बनाया था।

अपने सहोदर भाई हल्ल और विहल्ल से हार और सेचनक हाथी को छीनने के लिए अपने नाना चेटक से भयंकर युद्ध भी किया था। कोणिक-चेटकयुद्ध प्रसिद्ध है।

—जैनागमकथाकोष

जमाली

वैशाली के क्षत्रियकुण्ड का एक राजकुमार था। एक बार भगवान् क्षत्रियकुण्ड ग्राम में पधारे। जमाली भी उपदेश सुनने को आया।

अपनी आठ पत्नियों का त्याग करके उसने पांच-सौ क्षत्रिय कुमारों के साथ भगवान् के पास दीक्षा ली।

जमाली ने भगवान् के सिद्धान्त के विरुद्ध प्ररूपणा की थी। अतएव वह निह्नव कहलाया।

—भगवती, शतक ९, उद्देश ३३

थावच्चापुत्र

द्वारका नगरी की समृद्ध थावच्चा गाथापत्नी का पुत्र, जिसने एक सहस्र मनुष्यों के साथ भगवान् नेमिनाथ से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा महोत्सव श्रीकृष्ण ने किया।

थावच्चापुत्र ने १४ पूर्वो का अध्ययन किया। अनेक प्रकार का तप किया।

अन्त में सर्व प्रकार के दुःखों का अन्त करके सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गया।

—ज्ञातासूत्र, अध्ययन ५

कृष्ण

कृष्ण वासुदेव। माता का नाम देवकी, पिता का नाम वसुदेव था।

कृष्ण का जन्म अपने मामा कंस की कारा में मथुरा में हुआ।

जरासन्ध के उपद्रवों के कारण श्रीकृष्ण ने ब्रज-भूमि को छोड़कर सुदूर सौराष्ट्र में जाकर द्वारका नगरी बसाई।

श्रीकृष्ण भगवान् नेमिनाथ के परम भक्त थे। भविष्य में वह 'अमम' नाम के तीर्थंकर होंगे। जैन साहित्य में संस्कृत और प्राकृत उभय भाषाओं में श्रीकृष्ण का जीवन विस्तृत रूप में मिलता है।

द्वारका का विनाश हो जाने पर श्रीकृष्ण की मृत्यु जराकुमार के हाथों से हुई। —जैनागमकथाकोष

महावीर

वर्तमान अवसर्पिणी कालचक्र के २४ तीर्थंकरों में चरम तीर्थंकर।

आगम-साहित्य और आगमोत्तर ग्रन्थों में भगवान् महावीर के इतने नाम प्रसिद्ध हैं —

१. वर्धमान, २. महावीर, ३. महाश्रमण, ४. चरम तीर्थकृत्, ५. सन्मति, ६. महतिवीर, ७. विदेहदिन्न, ८. वैशालिक, ९. ज्ञातपुत्र, १०. देवार्य, ११. दीर्घतपस्वी आदि।

भगवान् महावीर के माता-पिता पार्श्वनाथीय परम्परा के श्रमणोपासक थे।

भगवान् महावीर का जन्म वैशाली में, जो पटना से २७ मील उत्तर में 'बसार' या 'बसाड़' नाम से प्रसिद्ध है, हुआ था।

महावीर के पिता राजा सिद्धार्थ, माता त्रिशलादेवी, ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन थे। महावीर की माता त्रिशलादेवी वैशाली-गणतन्त्र के प्रमुख राजा चेटक की बहिन थी।

माता-पिता के दिवंगत हो जाने के बाद नन्दिवर्धन से अनुमति लेकर तीस वर्ष की अवस्था मे महावीर ने दीक्षा ग्रहण की।

१२॥ वर्षो तक घोर तप किया। कठोर साधना की। केवलज्ञान पाकर ४२ वर्षो तक जन-कल्याण के लिए धर्मदेशना की। ७२ वर्ष की आयु में पावापुरी में भगवान् का परिनिर्वाण हुआ।

बौद्ध साहित्य के ग्रन्थों में भगवान् महावीर को दीर्घतपस्वी निग्गण्ठ नातपुत्त कहा गया है।

थेर

स्थविर, वृद्ध। शास्त्रों में तीन प्रकार के स्थविर कहे गए हैं —

(१) वयःस्थविर — ६० वर्ष या इससे अधिक की आयु वाला भिक्षु वयःस्थविर है।

(२) प्रव्रज्यास्थविर — २० वर्ष या इससे अधिक दीक्षापर्याय वाला भिक्षु प्रव्रज्यास्थविर है।

(३) श्रुतस्थविर — स्थानांग, समवायांग आदि के ज्ञाता भिक्षु को श्रुतस्थविर कहते हैं।

सिलेस-गुलिया : श्लेष-गुटिका

'श्लेष' शब्द का वास्तविक अर्थ है — चिपकना, चोंटना। जब किसी कागज के दो टुकड़ों को चिपकाना होता है तब गोंद आदि का उपयोग किया जाता है। वह श्लेष है।

प्रतीत होता है, कि प्रस्तुत प्रसंग में 'श्लेष' शब्द का अर्थ गोंद आदि चिपकाने वाली वस्तु है। 'श्लेष' अर्थात् गोंद की गुटिका अर्थात् वटिका (बत्ती)। इसका अर्थ हुआ — गोंद की लम्बी-सी बत्ती। यह अर्थ यहाँ पर संगत बैठता है। टीकाकार ने इसका 'श्लेष्मणो गुटिका' अर्थ किया है। इसके अनुसार यदि 'कफ की गुटिका' का अर्थ प्रस्तुत में लागू करना हो तो इस प्रकार घटाना होगा — जैसे कफ की कोई लम्बी बत्ती-सी गुटिका कहीं पड़ी हुई फीकी-सी होती है वैसे ही धन्यकुमार के होंठ हो गए थे। किन्तु 'श्लेष' शब्द, कफ अर्थ का वाचक नहीं मिलता।

अमरकोषकार ने तथा आचार्य हेमचन्द्र ने कफ के जो पर्याय बताये हैं, वे इस प्रकार हैं —

मायुः पित्तं कफः श्लेष्मा। —द्वि. कां. १६, मनुष्य वर्ग श्लोक ६२.

पित्तं मायुः कफः श्लेष्मा वलाशः स्नेहभूः खरः। —अभि. मर्त्य का., श्लोक ४६२.

आचार्य हेमचन्द्र के कथनानुसार — कफ, श्लेष्मन्, वलाश, स्नेहभू और खर, ये पाँच नाम श्लेष्म के हैं। इसमें 'श्लेष' शब्द नहीं आया है।

धन्य अनगार : धन्यदेव

मनुष्य गति या तिर्यच गति से जो प्राणी देवगति में जन्म लेता है, उसका वहाँ कोई नया नाम नहीं होता। परन्तु उसके पूर्व जन्म का ही नाम चलता रहता है।

धन्य मुनि का नाम धन्य देव पड़ा। दर्दुर मरकर देव हुआ, तो उसका नाम भी दर्दुर देव हुआ। मालूम होता है, कि देव जाति में मानव जाति के समान नामकरण-संस्कार की कोई प्रथा नहीं है। वहाँ पर मनुष्य-कृत अथवा पशुयोनि-प्रसिद्ध नाम का ही प्रचलन है।

चाउरंत : चतुरन्त

'चाउरंत' शब्द का अर्थ — चार अन्त। सारी पृथ्वी चार दिशाओं मे आ जाती है। जिस प्रकार चक्रवर्ती राजा क्षत्रिय-धर्म का उत्तम रीति से पालन करता हुआ, उन चारों दिशाओं का अन्त करता है — चारों दिशाओं पर विजय पाता है, सारी पृथ्वी पर अपना प्रभुत्व स्थापित करता है, उसी प्रकार भगवान् महावीर ने चार अन्त वाले — मनुष्यगति, देवगति, तिर्यचगति और नरकगति रूप — संसार पर, वास्तविक लोकोत्तर धर्म का पालन करते हुए,

विजय प्राप्त की। उस लोकोत्तर क्षात्र-धर्म से अपने अन्तरंग वैरी राग-द्वेष तथा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि को जीतकर, पूर्ण रूप से विजय प्राप्त की।

यहाँ पर एक महाभोगी चक्रवर्ती के साथ एक महायोगी (भगवान् महावीर) की तुलना की गई है। भगवान् धर्म के चक्रवर्ती हैं, अतः यह उपमा उचित ही है।

वाणिज्यग्राम

मगध देश का एक प्राचीन नगर। यह कोशल देश की राजधानी था। आचार्य हेमचन्द्र ने साकेत, कोशल और अयोध्या — इन तीनों को एक ही कहा है।

साकेत के समीप ही "उत्तरकुरु" नाम का एक सुन्दर उद्यान था, उसमें "पाशामृग" नाम का एक यक्षायतन था।

साकेत नगर के राजा का नाम मित्रनन्दी और रानी का नाम श्रीकान्ता था।

वर्तमान में फैजाबाद जिले में, फैजाबाद से पूर्वोत्तर छह मील पर सरयू नदी के दक्षिणी तट पर स्थित वर्तमान अयोध्या के समीप ही प्राचीन साकेत होना चाहिए, ऐसी इतिहासज्ञों की मान्यता है।

हस्तिनापुर

भारत के प्रसिद्ध प्राचीन नगर का नाम। महाभारत काल के कुरुक्षेत्र का यह एक सुन्दर एवं मुख्य नगर था।

भारत के प्राचीन साहित्य में इस नगर के अनेक नाम उपलब्ध हैं —

(१) हस्तिनी, (२) हस्तिनपुर, (३) हस्तिनापुर, (४) गजपुर आदि।

आजकल हस्तिनापुर का स्थान मेरठ से २२ मील पूर्वोत्तर और बिजनौर से दक्षिण-पश्चिम के कोण में बूढ़ी गंगा नदी के दक्षिण कूल पर स्थित है।

षष्ठ (छट्ठ)

छह टंक नहीं खाना (पहले दिन एकाशन करना, दूसरे दिन एवं तीसरे दिन उपवास करना, तथा चौथे दिन फिर एकाशन करना, इस प्रकार छह बार न खाने को छट्ठ (बेला) कहते हैं।

इसी प्रकार आठ बार नहीं खाने को अट्ठम (तेला) कहते हैं।

चार बार नहीं खाने को चउत्थभत्त; अर्थात् उपवास कहते हैं।

इस व्याख्या से प्रतीत होता है कि उस युग में धारणा और पारणा करने की पद्धति का प्रचलन नहीं था, जो आज वर्तमान में चल रही है। वर्तमान में जो धारणा और पारणा की पद्धति है, वह तपस्या की अपेक्षा से तथा चउत्थभत्त, छट्ठभत्त इत्यादिक की जो व्याख्या शास्त्र में विहित है, उसकी अपेक्षा से भी शास्त्रानुकूल नहीं है।

आयंबिल

'आयंबिल' शब्द एक सामासिक शब्द है। उसमें दो शब्द हैं — आयाम और अम्ल। आयाम का अर्थ है — मांड अथवा ओसामण। अम्ल का अर्थ है — खट्टा (चतुर्थ रस)। इन दोनों को मिलाकर जो भोजन बनता है, उसको आयामाम्ल; अर्थात् आयंबिल कहते हैं। ओदन, उड़द और सत्तू इन तीन अन्नों से आयंबिल किया जाता है। यह जैन परिभाषा है।

प्रवचनसारोद्धार में 'आयाम' शब्द के स्थान में 'आचाम्' शब्द का प्रयोग किया गया है।

आचार्य हरिभद्र आयामाम्ल, आचाम्ल एवं आचामाम्ल शब्दों का प्रयोग करते हैं।

उक्त पुरानी व्याख्याओं से ज्ञात होता है, कि आयंबिल में ओदन (चावल), उड़द और सत्तू इन तीन अन्नों का भोजन के रूप में प्रयोग होता था और स्वादजय की दृष्टि से यह उपयुक्त था।

आज तो प्राय: आयंबिल में बीसों चीजों का उपयोग किया जाता है। यह किस प्रकार शास्त्रविहित है ? यह विचारने योग्य है।

स्वाद-जय की साधना करने वाले विवेकी साधकों को शास्त्रीय व्याख्या पर ध्यान देना आवश्यक है।

परन्तु उक्त शब्द 'अम्ल' शब्द का जो प्रयोग किया गया है, और उसका जो चतुर्थ रस अर्थ बताया गया है, उसका भोजन के साथ क्या सम्बन्ध है ? यह मालूम नहीं पड़ता। संशोधक विद्वान् इस पर विचार करें।

क्योंकि आयंबिल भोजन की सामग्री में खटाई का कोई सम्बन्ध मालूम नहीं पड़ता, अत: अम्ल शब्द से जान पड़ता है कि श्री हरिभद्रसूरि से भी पूर्व समय में आयंबिल में कदाचित् छाछ का सम्बन्ध रहा हो।

बौद्धग्रन्थ मज्झिमनिकाय में १२वें महासीहनादसुत्त में बुद्ध की कठोर तपस्या का वर्णन है। उसमें बुद्ध को 'आयामभक्षी' अथवा 'आचामभक्षी' कहा गया है। वहाँ आयाम शब्द का अर्थ मांड किया गया है। इस प्राचीन उल्लेख से मालूम होता है, कि आयाम का मांड अर्थ था और आयामभक्षी कहे जाने वाले तपस्वी केवल मांड ही पीते थे। जैन परिभाषा में आयाम शब्द से ओदन, उड़द एवं सत्तू लिया गया है। परन्तु ये तीन आयाम के अर्थ में नहीं समाते। याद रखना चाहिए कि श्री हरिभद्र आदि आचार्यों ने आयाम का मुख्य अर्थ मांड ही बताया है।

—आवश्यकनिर्युक्तिवृत्ति, गाथा १६०३
—आचार्य सिद्धसेनकृत प्रवचनसारोद्धार वृत्ति
—आर्य देवेन्द्रकृत श्राद्धप्रतिक्रमण वृत्ति

संसृष्ट

गृहस्थ भोजन कर रहा हो और मुनिराज गोचरी के लिए गृहस्थ के घर पहुँचे, तब भोजन करते हुए दाता का हाथ साग, दाल, चावल वगैरह से या उसके रसदार जल से लिप्त हो — संसृष्ट हो और वह दाता उसी संसृष्ट हाथ से भिक्षा देने को तत्पर हो तो ऐसे भिक्षान्न को संसृष्ट अन्न कहते हैं। प्रस्तुत में धन्य अनगार को ऐसे संसृष्ट हाथ से दिए हुए अन्न के लेने का संकल्प है। शास्त्रों में इसका अनेक भंग करके विवेचन किया गया है।

उज्झितधर्मिक

जो खाद्य तथा पेय वस्तु केवल फेंकने लायक है, जिसको कोई भी खाना-पीना पसन्द नहीं करता, ऐसे खाद्य या पेय को उज्झितधर्मिक कहा जाता है।

उच्च, नीच, मध्यम कुल

प्रस्तुत में उच्च, नीच वा मध्यम शब्द कोई जाति या वंश की अपेक्षा से विवक्षित नहीं हैं, मात्र सम्पत्तिमान् कुल को लोग उच्च कुल कहते हैं, सम्पत्तिविहीन कुल को नीच कहते हैं और साधारण कुल को मध्यम कहा जाता है। जाति या वंश की विवक्षा होती तो प्रस्तुत में मध्यम शब्द की संगति नहीं हो सकती। जैन शासन में आचार तथा तत्त्व की दृष्टि से जातीयता अपेक्षित उच्च-नीच भाव सम्मत नहीं है। जैन शासन गुणमूलक है, किसी भी जाति का व्यक्ति जैन धर्म का आचरण कर सकता है। प्रस्तुत में उच्च, नीच और मध्यम कुल में भिक्षाभ्रमण का जो उल्लेख है

वह स्पष्टतया मुनिराज के जाति निरपेक्ष होकर सब कुलों में गोचरी जाने के सामान्य नियम का सूचक है। सनातन जैनशासन की पहले से ही यह प्रणाली रही है।

विलमिव पन्नगभूएणं

जैसे पन्नग–सर्प जब बिल में प्रवेश करता है तो सीधा ही उसमें उतर जाता है, ठीक उसी प्रकार स्वादेन्द्रिय के ऊपर जय पाने के इच्छुक मुनिराज प्राप्त प्रासुक खाद्य वस्तु को मुख में डालते ही निगल जाते हैं, परन्तु एक जबड़े से दूसरे जबड़े की तरफ ले जाकर चबाते नहीं; अर्थात् खाद्य का रस न लेने के कारण वे निगल जाते हैं। ऐसा अभिप्राय 'बिलमिव पन्नग' इत्यादि वाक्य का है।

इसका मूल आशय यही है कि मुनि की भोजन में आसक्ति नहीं होनी चाहिए। लेशमात्र भी रस–लोलुपता नहीं होनी चाहिए। केवल संयम–पालन के लिए शरीर–निर्वाह के लक्ष्य से ही उसे आहार करना चाहिए।

सामाइयमाइयाइं

इस वाक्य से सूचित होता है कि सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। ग्यारह अंगों में प्रथम नाम आचारांग सूत्र का आता है। अतः प्रस्तुत में 'आयारमाइयाइं' अर्थात् आचारांग वगैरह ग्यारह अंगों का निर्देश होना उचित है, तब 'सामाइयमाइयाइं' ऐसा निर्देश क्यों ? इसका समाधान इस प्रकार है —

आचार अंग के प्रथम वाक्य से ही अनारंभ की चर्चा है और इधर सामायिक में भी अनारंभ की चर्चा तथा चर्या प्रधान है; अतः आचार अंग तथा सामायिक दोनों में असाधारण साम्य है, एकरूपता है, अतः 'आयारमाइयाइं' के स्थान में 'सामाइयमाइयाइं' ऐसा निर्देश असंगत नहीं है। अथवा मुनिराज प्रथम सामायिक स्वीकार करता है और उसमें अनारंभधर्मप्ररूपक आचार अंग का भी समावेश हो जाता है; इस कारण भी ऐसा निर्देश असंगत प्रतीत नहीं होता। अथवा साम अर्थात् सामायिक तथा आजाइयं अर्थात् आचारांगसूत्र। आचारांग की निर्युक्ति में जिस गाथा में आयार, आचाल इत्यादि शब्दों को 'आचार' का पर्याय बताया गया है, उसी गाथा में 'आजाति' शब्द को भी आचार अंग का पर्याय बताया है। अतः 'सामाइय' का अर्थ सामायिक और आचारांग इत्यादि (ग्यारह अंग) बराबर संघटित होता है। इस प्रकार योजना करने से 'सामायिक' का ग्रहण हो जाएगा और आचार अंग भी। साथ ही 'आइय' शब्द से आदिक अर्थात् दूसरे शेष अंग भी आ जायेंगे। अथवा इस पद का अर्थ इस प्रकार करना चाहिए —सामायिक से प्रारम्भ करके ग्यारह अंग— सामायिकादिकानि। दोनों पदों के बीच में जो मकार है वह 'अन्नमन्नं' प्रयोग की तरह अलाक्षणिक है।



प्रथम वर्ग — कोष्ठक

क्रम	व्यक्ति	माता	पिता	स्थान	गुरु	दीक्षा	तप	संलेखना	स्थान	विमान	मोक्ष
१.	जालिकुमार	धारिणी	श्रेणिक	राजगृह	भगवान् महावीर	१६ वर्ष	गुणरत्न.	एक मास	विपुल	विजय	महाविदेह
२.	मयालि	"	"	"	"	"	"	"	"	वैजयन्त	"
३.	उपजालि	"	"	"	"	"	"	"	"	जयन्त	"
४.	पुरुषसेन	"	"	"	"	"	"	"	"	अपराजित	"
५.	वारिषेण	"	"	"	"	"	"	"	"	सर्वार्थसिद्ध	"
६.	दीर्घदन्त	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"
७.	लष्टदन्त	"	"	"	"	"	"	"	"	अपराजित	"
८.	वेहल्लकुमार	चेलणा	"	"	"	"	"	"	"	जयन्त	"
९.	वेहायसकुमार	"	"	"	"	"	"	"	"	वैजयन्त	"
१०.	अभयकुमार	नन्दादेवी	"	"	"	"	"	"	"	विजय	"

द्वितीय वर्ग — कोष्ठक

क्रम	व्यक्ति	माता	पिता	स्थान	गुरु	दीक्षा	तप	संलेखना	स्थान	विमान	मोक्ष
१.	दीर्घसेन	धारिणी	श्रेणिक	राजगृह	भगवान् महावीर	१६ वर्ष	गुणरत्न.	एक मास	विपुल	विजय	महाविदेह
२.	महासेन	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"
३.	लष्टदन्त	"	"	"	"	"	"	"	"	वैजयन्त	"
४.	गूढ़दन्त	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"
५.	शुद्धदन्त	"	"	"	"	"	"	"	"	जयन्त	"
६.	हल्लकुमार	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"
७.	द्रुमकुमार	"	"	"	"	"	"	"		अपराजित	"
८.	द्रुमसेन	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"
९.	महाद्रुमसेन	"	"	"	"	"	"	"	"	सर्वार्थसिद्ध	"
१०.	सिंह	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"
११.	सिंहसेन	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"
१२.	महासिंहसेन	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"
१३.	पुण्यसेन	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"

तृतीय वर्ग — कोष्ठक

क्रम	व्यक्ति	माता	पिता	स्थान	गुरु	दीक्षा	तप	संलेखना	स्थान	विमान	मोक्ष
१.	धन्यकुमार	भद्रा	—	काकन्दी	भगवान् महावीर	९ मास	गुण०	एक मास	विपुल	सर्वार्थसिद्ध	महाविदेह
२.	सुनक्षत्र	"	—	"	"	"	"	"	"	"	"
३	ऋषिदास	"	—	राजगृह	"	"	"	"	"	"	"
४.	पेल्लक	"	—	"	"	"	"	"	"	"	"
५.	रामपुत्र	"	—	साकेत	"	"	"	"	"	"	"
६.	चन्द्रिकुमार	"	—	"	"	"	"	"	"	"	"
७.	पृष्टिमातृक	"	—	वाणिज्य ग्राम	"	"	"	"	"	"	"
८.	पेढालपुत्र	"	—	"	"	"	"	"	"	"	"
९.	पोट्टिल्ल	"	—	हस्तिनापुर	"	"	"	"	"	"	"
१०.	वेहल्लकुमार	"	—	राजगृह	"	६ मास	"	"	"	"	"

पारिभाषिक शब्दकोष

. **अंग**

गणधरप्रणीत जैन आगमसाहित्य। आचारांग से दृष्टिवाद तब बारह अंग हैं।

[दृष्टिवाद लुप्त है।]

. **अन्तगडदसा**

८ वाँ अङ्गसूत्र। इसमें उसी भव में अन्तिम श्वासोच्छ्वास के साथ संसार का अन्त करने वाले — मोक्ष प्राप्त रने वाले — साधकों के जीवन का वर्णन है।

. **अणगार**

जिसके अगार — घर — न हो, त्यागी, साधु, भिक्षु।

. **अपरितंतजोगी**

खेद-रहित योग वाला, खेदशून्य-समाधि वाला, संयम-साधना में न थकने वाला साधक।

. **अभिग्गह**

प्रतिज्ञा, भोजन आदि लेने में पदार्थों की मर्यादा बाँधना, विशेष प्रकार का नियम लेना।

. **आयार-भंडय**

आचार पालने के उपकरण — पात्र, मुखवस्त्रिका और रजोहरण आदि।

. **आयंबिल**

तपविशेष, रूक्ष आहार ग्रहण करना, स्वादजय की साधना।

. **आउक्खय, भवक्खय, ठिइक्खय**

आयु-कर्म के दलिकों का क्षय। भव का क्षय, वर्तमान नर, नारक आदि पर्याय का अन्त। भुज्यमान ायुकर्म की स्थिति अर्थात् कालमर्यादा की समाप्ति।

. **ईरियासमिय**

चलने-फिरने में, आने-जाने में उपयोग (विवेक) रखने वाला, अर्थात् यतना-सावधानी से गमन करने ाला।

०. **उववाय**

आत्मा औपपातिक है, देव और नारक भव में उत्पत्ति।

१. **उज्झियधम्मिय**

ऐसा पदार्थ जो हेय अर्थात् छोड़ने योग्य हो, जिसे दूसरों ने त्याग दिया हो।

२. **काउस्सग्ग**

कायोत्सर्ग, कायिक ममत्व का परित्याग, एवं शारीरिक क्रियाओं का परित्याग।

१३. गुणरयण तवोकम्म

गुणरत्न तप। यह तप १६ मास का है, जिसमें प्रथम मास में एक उपवास, दूसरे में दो और क्रमशः बढ़ते १६वें में १६ उपवास होते हैं।

१४. गुत्तबंभयारी

मन, वचन और काय को संयत करने वाला ब्रह्मचारी भिक्षु।

१५. छट्ठ

एक साथ दो उपवास अर्थात् दो दिन संपूर्ण आहार का परित्याग एवं अगले-पिछले दिन एकाशन करके छह बार के भोजन आदि का त्याग करना।

१६. जयण-घडण जोग-चरित्त

यतन — यत्न, यतना, विवेक, प्राणी-रक्षा करना। घटन — प्रयत्न, उद्यम, पुरुषार्थ। योग — सम्बन्ध, मिलाप, जोड़ना। जिसमें यतना और उद्यम है, इस प्रकार के चारित्र या चरित्र वाला व्यक्ति।

१७. तव

तपः, जिसमें कर्मो का क्षय होता है, इच्छानिरोध।

१८. थेर

स्थविर, वृद्ध। आगम में स्थविर के तीन प्रकार बताये हैं —

(१) वयःस्थविर — ६० वर्ष की आयु वाला भिक्षु।

(२) प्रव्रज्यास्थविर — २० वर्ष की दीक्षा पर्याय वाला भिक्षु।

(३) श्रुतस्थविर — स्थानांग आदि का ज्ञाता।

१९. पत्त-चीवर

पात्र — भाजन, चीवर — वस्त्र।

२०. परिणिव्वाणवत्तिय

श्रमणों के देह-त्याग के निमित्त से कायोत्सर्ग का किया जाना।

२१. पोरिसी

एक पहर का समय। पुरुष-प्रमाण छाया-काल।

२२. संयम

मनोनिरोध, इन्द्रिय-निग्रह, यत्नपूर्वक जीवहिंसादि का त्याग।

२३. समुदाण

उच्च, नीच और मध्यम कुल की भिक्षा, गोचरी।

२४. सज्झाय

स्वाध्याय, शास्त्र का पठन आवर्तन इत्यादि।

२५. समण

श्रमण — श्रमशील मुनि, निर्ग्रन्थ।

२६. संलेहणा

संलेखना, शारीरिक और मानसिक तप से कषाय आदि आत्मविकारों को तथा काय को कृश करना। मरण से पूर्व अनशन व्रत, संथारा करना।

२७. सामण्ण-परियाय

श्रामण्यपर्याय, साधुता का काल, संयम-वृत्ति।

२८. समोसरण

समवसरण, तीर्थङ्कर का पधारना। १२ प्रकार की सभा का मिलना। जहां भगवान् विराजित होते हैं, वहां देवों द्वारा की जाने वाली विशिष्ट रचना।

२९. सागरोवम

सागरोपम, काल विशेष, दश कोडाकोडी पल्योपमपरिमित काल, जिसके द्वारा नारकों और देवों का आयुष्य नापा जाता है।



अव्यय-पद-संकलना

अ

१. अ — और
२. अन्तं — अन्त, अवसान, मृत्यु
३. अंतिए — समीप, पास
४. अण्णया — अन्यदा, किसी समय
५. अलं — समर्थ, पूर्ण
६. अवि — भी
७. अह — अथ, पक्षान्तर, आरम्भ
८. अहापज्जत्तं — पर्याप्त, काफी
९. अहापडिरूवं — यथायोग्य
१०. अहासुहं — सुख से, आराम से

आ

११. आणुपुव्वीए — अनुक्रम से

इ

१२. इ, इति — समाप्ति, पूर्ण
१३. इमेयारूवे — इस प्रकार

उ

१४. उच्चं — ऊँचा
१५. उड्ढं — ऊपर
१६. उप्पिं — ऊपर

ए

१७. एवं — इस प्रकार
१८. एव — ही, निश्चय
१९. एवामेव — इसी प्रकार

क

२०. कइ — कितने
२१. कदाइ, कयाइ — कभी
२२. कहिं — कहाँ
२३. केवइयं — कितने

ख

२४. खलु — निश्चय

च

२५. चेव — ठीक ही

ज

२६. जइ — यदि
२७. जं — जिस
२८. जया — जब
२९. जहा — जैसे
३०. जहानामए — यथानाम, जैसे कि
३१. जामेव — जिस
३२. जाव — यावत्, तक
३३. जावज्जीवाए — जीवनपर्यन्त
३४. जाहे — जब
३५. जेणेव — जिस ओर

ण

३६. णं — वाक्यालंकार
३७. ण — नहीं
३८. णवरं — विशेष
३९. णाणत्तं — नानात्व, भिन्नता
४०. णामं — नाम
४१. णो — नहीं

त

४२. तए — अनन्तर
४३. तं जहा — वह इस प्रकार
४४. तत्थ — वहाँ
४५. तहा — तथा, उसी प्रकार
४६. तहेव — उसी प्रकार
४७. तामेव — उसी
४८. ति — समाप्त
४९. तिकट्टु — इस प्रकार करके
५०. तेणं — उस
५१. तेणेव — उस ओर

द

५२. दूरं — दूर

न

५३. नवरं — विशेष

५४. नामं — नाम

प

५५. पि — भी

म

५६. मा — नहीं, निषेध

य

५७. य — और

व

५८. वा — विकल्प

५९. वावि — अपि, भी

स

६०. सच्चेव — वही

६१. सद्धिं — साथ

६२. सयं — स्वयं, अपने आप

६३. सव्वत्थ — सर्वत्र

६४. से — वह, अथ

ह

६५. हु, खलु — निश्चय



क्रिया-पद-संकलना

१. **अड** — घूमना
अडमाणे

२. **अहिज्ज** — अध्ययन करना
अहिज्जइ
अहिज्जित्ता
अहीए (अधीत:)

३. **कर** — करना
करेइ
करेन्ति
करेह
कारेइ
काहिइ
करित्ता
करित्तए
किच्चा
कट्टु

४. **कह** — कहना
कहेइ

५. **कप्प** — योग्य
कप्पइ

६. **कम** — घूमना
निक्खमइ
निक्खमित्ता
पडिनिक्खमइ
पडिनिक्खमित्ता
निक्खंतो
वीईवइत्ता (वि अति व्रज) लांघ कर

७. **गम** — जाना
उवागए
उवागमित्ता
पडिगए
पडिगया
निग्गया

८. **गच्छ** — जाना
गच्छइ
गच्छित्ता
गच्छिहिइ
गच्छित्तए
उवागच्छइ

९. **गणेज्ज** — गिनना
गणेज्जमाणे

१०. **गेण्ह** — ग्रहण करना
उग्गिण्हामि

११. **गिल** — ग्लानि करना
गिलाइ

१२. **गिण्ह** — ग्रहण करना
गेण्हंति
गेण्हावेइ
पडिगाहित्तते
पडिगाहित्ता

१३. **चर** — चलना
चरमाणे

१४. **चिट्ठ** — ठहरना
चिट्ठइ

१५. **जाण** — जानना
जाणित्ता

१६. **जोइज्ज** — दिखाई देना
जोइज्जमाणे

१७. **तर** — गति करना
उत्तरंति
अवयरंति
ओयरंति

१८. **दूइज्ज** — घूमना
दूइज्जमाणे

९. **दिस** — **बतलाना**
उद्दिस्सइ

०. **दंस** — **दिखलाना**
पडिदंसेइ

१. **नमंस** — **नमस्कार करना**
नमंसइ
नमंसित्ता

२. **पज्जुवास** (परि, उप, आस) — **सेवा करना**
पज्जुवासइ
पज्जुवासित्ता

३. **पन्नाय** — **पहचानना**
पन्नायंति

४. **पाउण** — **पालन करना**
पाउणित्ता

५. **पण्णत्ते** (प्रज्ञप्त) — **कहा**

६. **पुच्छ** — **पूछना**
पुच्छइ
आपुच्छामि
आपुच्छित्ता

७. **भण** — **कहना**
भन्नइ
भाणियव्वं

८. **भव** — **होना**
भवमाणे
भवित्ता

९. **भास** — **बोलना**
भासिस्सामि

०. **मिलाय** — **म्लान होना**
मिलायमाणी

१. **रुह** — **चढ़ना**

२. **लभ** — **प्राप्त करना**
लभइ

३. **वन्द** — **वन्दन करना**
वन्दइ
वन्दित्ता

४. **वागर** — **कहना**
वागरेइ
वागरित्ता

३५. **वय** — **बोलना**
वयासी
वदासी

३६. **वस** — **रहना**
परिवसइ

३७. **वय** — **जाना**
पव्वयामि
पव्वइत्ता
पव्वइए

३८. **संचाए** — **सकना**
संचाएइ

३९. **सिज्झ** — **सिद्ध होना**
सिज्झइ
सिज्झइत्ता
सिज्झिहिइ
सिज्झिसंति

४०. **सम्म** — **सुनना**
निसम्म (निशम्य)

४१. **सोच्चा** — श्रुत्वा — **सुनकर**

४२. **सोभ** — **शोभित होना**
उवसोभमाणे

४३. **समोसढे** (सम्, अव, सृतः) — **आए, पधारे**

४४. **हर** — **लेना**
आहारेइ
आहारित्ता
विहरेइ
विहरित्ता
विहरित्तए

४५. **हो** — **होना**
होइ
होत्था

४६. **ने, णे** — **ले जाना**
नेयव्वा
णेयव्वा

शब्दार्थ

अ — और
अंगस्स — अंग का
अंगाइं — अंग (ब. वचन)
अंतं — अन्त, अवसान, मृत्यु
अंतिए — समीप, पास, नजदीक
अंतेवासी — शिष्य
अंब-गुट्ठिया — आम की गुठली
अंबगपेसिया — आम की फाँक
अंबाडग-पेसिया — आम्रातक — अम्बाड़े की फाँक
अकलुसे — क्रोध आदि कलुषों से रहित
अक्खयं — कभी नाश न होने वाला
अक्खसुत्त-माला — रुद्राक्ष की माला
अगत्थिय-संगलिया — अगस्तिक वृक्ष की लकड़ी
अग्गहत्थेहिं — हाथ के पंजों से
अच्छीण — आँखों का
अज्ज — आर्य
अज्झयणस्स — अध्ययन का
अज्झयण — अध्ययन
अज्झयणे — अध्ययन
अट्ठ — आठ
अट्ठओ — आठ-आठ
अट्ठण्हं — आठ के (विषय में)
अट्ठमस्स — आठवें का
अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए — हड्डी, चमड़ा और नसों से
अट्ठी — अस्थि, हड्डी
अट्ठे — अर्थ
अडमाणे — घूमता हुआ
अड्ढा — समृद्धा, ऐश्वर्य वाली
अणंतं — अन्त रहित
अणगारं — अनगार को
अणगारस्स — अनगार — माया-ममता को छोड़कर घर का त्याग करने वाले साधु को
अणगारे — अनगार
अणज्झोववण्णे — विषयों में अनासक्त
अणायंबिलं — अनाचाम्ल, आयंबिल नामक तप विशेष से रहित
अणिक्खित्तेणं — अनिक्षिप्त (निरन्तर), बिना किसी बाधा के
अणुज्झिय-धम्मियं — उपयोगी, रखने योग्य
अणुत्तरोववाइयदसाणं — अनुत्तरौपपातिकदशा नाम वाले नौवें अंगशास्त्र का
अणेग-खंभसयसन्निविट्ठं — अनेक सैकड़ों स्तम्भों से युक्त
अण्णया — अन्यदा, किसी समय
अदीणे — दीनता से रहित
अपराजिते — अपराजित नामक अनुत्तर विमान में
अपरितंतजोगी — अविश्रान्त अर्थात् निरन्तर समाधि-युक्त
अपरिभूआ — अतिरस्कृत, नीचा न देखने वाली
अपुणरावत्तयं — जिससे वापिस न लौटना पड़े
अप्पडिहय-वर-नाण-दंसण-धरेणं — अप्रतिहत (विघ्न-बाधा से रहित) श्रेष्ठ ज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले
अप्पाणं — अपने आत्मा को
अप्पाणेणं — आत्मा से
अब्भणुण्णाते — आज्ञा होने पर, आज्ञा मिल जाने पर
अब्भत्थिते — अन्दर उत्पन्न हुआ विचार
अब्भुग्गत-मुस्सिते — बड़े और ऊँचे
अब्भुज्जताए — उद्यम वाली
अभओ — अभयकुमार
अभय-दएणं — अभय देने वाले
अभयस्स — अभयकुमार का
अभये — अभयकुमार

अभिग्गहं — प्रतिज्ञा, आहार आदि करने की मर्यादा बाँधना
अमुच्छिते — बिना किसी लालसा के, अनासक्त
अम्मयं — माता को
अयं — यह
अयलं — अचल, स्थिर
अरुयं — आधि व्याधि से रहित
अलं — पूर्ण
अलत्तग-गुलिया — महेंदी (महावर) की गुटिका
अवकंखंति — चाहते हैं
अवि — भी
अविमणे — बिना दुःखित चित्त के
अविसादी — बिना विषाद (खेद) के
अव्वाबाहं — बाधा से रहित
असंसट्ठ — बिना भरे हाथों से
असि — है
अह(हं) — मैं
अह — अथ, पक्षान्तर या प्रारम्भ सूचक अव्यय
अहा-पज्जत्तं — आवश्यकतानुसार
अहापडिरूवं — यथायोग्य, उचित
अहासुहं — सुख के अनुसार
अहिज्जति — अध्ययन करता है
अहीए — पठित, सीखा
अहीण — हीनतारहित, पूरा
आइगरेणं — प्रारम्भ करने वाले
आइल्लाणं — आदि के, पहले के
आउक्खएणं — आयु के क्षय होने से
आणुपुव्वीए — अनुक्रम से
आपुच्छइ (ति) — पूछता है, पूछती है
आपुच्छणं — पूछना
आपुच्छामि — पूछता हूँ
आयंबिलं — एक प्रकार का तप
आयंबिल-परिग्गहिएणं — आयंबिल तप की रीति से ग्रहण किया हुआ
आयवे — धूप में
आयार-भंडए — संयम पालने के उपकरण
आयाहिणं — आदक्षिण
आयाहिणं-पायाहिणं — दक्षिण दिशा से आरम्भ की हुई प्रदक्षिणा
आरण्णच्चुए — आरण — ग्यारहवां देवलोक, अच्युत — बारहवां देवलोक
आहरति — आहार करता है
आहारं — भोजन
आहारेति — भोजन करता है
आहिते — कहा गया है
इ — इति, परिचय या समाप्ति-सूचक अव्यय
इंगाल-सगडिया — कोयलों की गाड़ी
इंदभूति-पामोक्खाणं — इन्द्रभूति आदि में
इच्छामि — चाहता हूँ
इति — समाप्ति-बोधक-अव्यय, परिचयात्मक अव्यय
इब्भवर-कन्नगाणं — धनी श्रेष्ठियों की कन्याओं का
इमासिं — इनमें
इमे — ये
इमेणं — इससे
इमेयारूवे — इस प्रकार के
इसिदासे — ऋषिदासकुमार
ईरिया-समिते — ईर्यासमिति वाला, यत्नाचारपूर्वक चलने वाला
उक्कमेणं — उत्क्रम से, उल्टे क्रम से नीचे से ऊपर
उक्खेवओ — आक्षेप, न कहे हुए वाक्यों का पीछे के वाक्यों से ग्रहण करना
उग्गहं — अवग्रह, सम्मान, पूजा आदि
उच्च. — (उच्च-मज्झम-नीय) उच्च, मध्यम और नीच कुलों से
उच्चट्ठवणते — ऊँचे गले का पात्र विशेष
उज्जाणातो — उद्यान से, बगीचे से
उज्जाणे — उद्यान, बगीचा
उज्झिय-धम्मियं — निरुपयोगी, फेंक देने योग्य
उट्ट-पाद — ऊँट का पैर
उट्ठाणं — ओठों की

उड्ढं — ऊँचे
उण्हे — गर्मी में
उदरं — पेट
उदर-भायण — उदर-भाजन, पेट रूपी पात्र
उदर-भायणेणं — उदर-भाजन से
उदर-भायणस्स — उदर भाजन की
उप्पि — ऊपर
उब्भड-घटामुहे — घड़े के मुख के समान विकराल मुख वाला
उम्मुक्क-बालभावं — बालकपन से अतिक्रान्त, जिसने बचपन पार किया हो
उयरंति — उतरते हैं
उर-कडग-देस-भाएणं — वक्षस्थल (छाती) रूपी चटाई के विभागों से
उर-कडयस्स — छाती रूपी चटाई की
उवयालि — उपजालिकुमार
उववज्जिहिंति — उत्पन्न होंगे
उववण्णे, न्ने — उत्पन्न हुआ
उववायो — उपपात, उत्पत्ति
उवसोभेमाणे — शोभायमान होता हुआ
उवागच्छति — आता है
उवागवे — आया
उव्वुड-णयणकोसे — जिसकी आँखें भीतर धँस गई हैं
ऊरुस्स — ऊरुओं का
ऊरू — दोनों ऊरू
एएसिं — इनके विषय में, इनका
एक्कारस — ग्यारह
एगदिवसेणं — एक ही दिन में
एयं — इस
एयारूवे — इस प्रकार का
एवं — इस प्रकार
एव — ही, निश्चयार्थ बोधक अव्यय
एवामेव — इसी प्रकार
एसणाए — एषणा-समिति — उपयोगपूर्वक आहार आदि की गवेषणा से
ओयरंति — उतरते हैं
ओरालेणं — उदार — प्रधान
कइ — कितने
कंक-जंघा — कङ्क नामक पक्षी की जंघा
कंपण-वातियो — कम्पनवायु के रोग वाला व्यक्ति
कट्ठ-कोलंवए — लकड़ी का कोलंब — पात्र विशेष
कट्ठ-पाउया — लकड़ी की खड़ाऊँ
कडि-कडाहेणं — कटि (कमर) रूपी कटाही ने
कडि-पत्तस्स — कटि-पत्र की, कमर की
कण्ण — कान
कण्णाणं — कानों की
कण्हो — कृष्ण वासुदेव
कतरे — कौनसा
कदाति — कभी, कदाचित्
कन्नावली — कान के भूषणों की पंक्ति
कप्पति — कल्पता है, योग्य है
कप्पे — कल्प, वैमानिक देवों के सौधर्म आदि विमान
कय-लक्खण — सफल लक्षण वाला
कयाइ (ति) — कदाचित्, कभी
करग-गीवा — करवे (मिट्टी के छोटे-से पात्र) की ग्रीवा अर्थात् गला
करेंति — करते हैं
करेति — करता है
करेह — करो
कल-संगलिया — कलाय — धान्य विशेष की फली
कलातो — कलाएँ
कलाय-संगलिया — कलाय की फली
कहिं — कहाँ
कहेति — कहता है
काउस्सग्गं — कायोत्सर्ग, धर्मध्यान
काकं(गं)दी — काकन्दी नाम की नगरी
काक-जंघा — कौवे की जाँघ, काक-जंघा नामक औषधि विशेष
कागंदीए — काकन्दी नगरी में

कायंदीओ — काकन्दी नगरी से
कारेति — करवाता है
कारल्लय-छल्लिया — करेले का छिलका
१. कालं — काल, समय
२. कालं — मृत्यु (से)
काल-गते — मृत्यु को प्राप्त
कालगयं — मृत्यु को प्राप्त हुए को
काल-मासे — मृत्यु के समय
कालि-पोरा — कालि — वनस्पति विशेष का पर्व (सन्धि-स्थान)
कालेणं — काल से, समय से (में)
काहिति — करेगा
किच्चा — करके
कुंडिया-गीवा — कमण्डलु का गला
कुमारे — कुमार
के — कौनसा
केणट्ठेण — किस कारण
केवतियं — कितने
कोणितो — कोणिक राजा
खंदओ (तो) — स्कन्दक संन्यासी
खंदग-वत्तव्वया — स्कन्दक सम्बन्धी कथन
खंदयस्स — स्कन्दक संन्यासी का
खलु — निश्चय से
खीर-धाती — दूध पिलाने वाली धाय
गंगा-तरंग-भूएणं — गंगा की तरंगों के समान हुए
गच्छति — जाता है
गच्छिहिति — जाएगा
गणिज्ज-माला — गिनती करने की माला
गणेज्ज-माणेहिं — गिने जाते हुए
गते — गया
गामानुगामं — एक गाँव से दूसरे गाँव
गिलाति — खेद मानता है, दु:खित होता है
गीवाए — ग्रीवा की, गर्दन की
गुणरयण — गुणरत्न नामक तप
गुणसिलए (ते) — गुण-शिल नामक उद्यान
गूढदंते — गूढदन्तकुमार
गेण्हंति — ग्रहण करते हैं
गेण्हावेति — ग्रहण कराता (ती) है
गेवेज्जविमाणपत्थडे — ग्रैवेयक देवों के निवास-स्थान के प्रान्त भाग से
गोतमपुच्छा — गौतम का पूछना
गोतमसामी — गौतम स्वामी, श्री महावीर स्वामी के मुख्य शिष्य
गोत(य)मा — हे गौतम !
गोतमे — गौतम स्वामी
गोयमे — गौतम स्वामी
गोलावली — एक प्रकार के गोल पत्थरों की पंक्ति
चउदसण्हं — चौदह का
चंदिम — चन्द्रविमान
चंदिमा — चन्द्रिकाकुमार
चक्खुदएणं — ज्ञानचक्षु प्रदान करने वाले
चम्मच्छिरत्ताए — चमड़ा और शिराओं के कारण
चरेमाणे — चलते हुए, विहार करते हुए
चलंतेहि — चलते हुए, हिलते हुए
चिंतणा — धर्मचिन्ता
चिंता — चिन्ता
चिट्ठति — स्थित है, रहता है, रहती है
चित्त-कटरे — गौ के चरने के कुण्ड के नीचे का हिस्सा
चेतिए (ते) — चैत्य, उद्यान, बगीचा
चेल्लणाए — चेल्लणा रानी के
चेव — ही, ठीक ही
चोदसण्हं — चौदह का
छट्ठंछट्ठे — षष्ठ षष्ठ तप से, बेले-बेले
छट्ठस्सवि — छठे (भक्त) पर भी
छत्तचामरातो — छत्र और चामरों से
छमासा — छः महीने
छिन्ना — तोड़ी हुई
जं — जिस
जंघाणं — जंघाओं का
जंबुं — जम्बूस्वामी को

जंबू — जम्बूस्वामी, सुधर्मास्वामी के मुख्य शिष्य
जणणीओ — माताएँ
जणवयविहार — देश में विहार
जधा — जैसे
जमालि — जमालिकुमार
जम्मं — जन्म
जम्मजीवियफले — जन्म और जीवन का फल
जयंते — जयन्त विमान में
जयणघडणजोगचरित्ते — जयन (प्राप्त योगों में उद्यम) घटन (अप्राप्त योगों की प्राप्ति का उद्यम) और योग (मन आदि इन्द्रियों के संयम) से युक्त चरित्र वाला
जरग्ग-ओवाणहा — सूखी जूती
जरग्ग-पाद — बूढ़े बैल का पैर (खुर)
जहा — जैसा, जैसे
जहाणामए (ते) — यथा-नामक, कुछ भी नाम वाला
जा — जैसी
जाणएणं — जानने वाले
जाणूणं — जानुओं का
जाणेत्ता — जानकर
जाते — बालक
जाते — हो गया
जामेव — जिस
जाली — जालि अनगार को
जालि — जालिकुमार
जालिस्स — जालि की
जालीकुमारो — जालिकुमार
जावज्जीवाए — जीवनपर्यन्त
जाहे — जब
जिणेणं — राग-द्वेष को सर्वथा जीतने वाले जिन भगवान् ने
जियसत्तुं — जितशत्रु राजा ने
जियसत्तू — जितशत्रु नाम का राजा
जिब्भाए — जिह्वा की, जीभ की
जीवेण — जीव की शक्ति से
जीहा — जिह्वा, जीभ
जेणेव — जिस ओर
जोइज्जमाणेहिं — दिखाई देती हुई
ठाणं — स्थान को
ठिती — स्थिति
ढेणालिया-जंघा — ढेणिक पक्षी की जंघा
ढेणालियापोरा — ढेणिक पक्षी के सन्धिस्थान
ण — नहीं, निषेधार्थक अव्यय
णगरी — नगरी
णगरीए — नगरी में (से)
णगरीतो — नगरी से
णगरे — नगर
णमंसति — नमस्कार करता है
णवरं — विशेषता-बोधक अव्यय
णाणत्तं — नानात्व, भिन्नता
णाम — नाम
णामं — नाम वाला
णिक्खंतो — निकला, गृहस्थी छोड़कर दीक्षित हो गया
णिक्खमणं — निष्क्रमण, दीक्षा होना
णिग्गता (या) — निकली
णिग्गते — निकला
णिग्गतो (ओ) — निकला
णिम्मंस — मांस-रहित
णो — नहीं, निषेधार्थक अव्यय
तए — इसके अनन्तर
तओ — तीन
तं — उस
तं जहा — जैसे
तच्चस्स — तीसरे
तते — इसके अनन्तर
ततो — इसके अनन्तर
तत्थ — वहां
तरुणए (ते) — कोमल
तरुणगएलालुए — कोमल आलू
तरुणग-लाउए — कोमल तुम्बा
तरुणिया — छोटी, कोमल

तव — तेरा
तव-तेय-सिरीए — तप और तेज की लक्ष्मी से
तव-रूव-लावन्ने — तप के कारण उत्पन्न हुई सुन्दरता
तवसा — तप से
तवेणं — तप से
तवो-कम्मं — तप:क्रिया
तवो-कम्मेणं — तप-कर्म से
तस्स — उसका
तहा — उसी तरह
तहा-रूवाणं — तथा-रूप, शास्त्रों में वर्णन किये हुए गुणों से युक्त साधुओं का
तहेव — उसी प्रकार
ताए — उस
ताओ — उस
तामेव — उसी
तारएणं — दूसरों को तारने वाले
तालियंट-पत्ते — ताड़ के पत्ते का पंखा
ति — इति समाप्ति या परिचयबोधक अव्यय
ति कट्टु — इस प्रकार करके
तिक्खुत्तो — तीन बार
तिण्णि — तीन
तिण्हं — तीन का
तित्थगरेणं — चार तीर्थों की स्थापना करने वाले के द्वारा
तिन्नेणं — संसार-सागर से पार हुए
तीसे — उसे
तुब्भेणं — आप से
तुमं — तुम
ते — वे
तेएणं — तेज से
तेणं — उस
तेणट्ठेणं — इस कारण
तेणेव — उसी ओर
तेत्तीसं — तेतीस
तेरस — तेरह
तेरसण्हवि — तेरहों को
तेरसमे — तेरहवाँ
तेरसवि — तेरह की
तेसिं — उनके
तो — तो
त्ति — इति
थावच्चापुत्तस्स — थावच्चापुत्र की, थावच्चा नामक गाथापत्नी का पुत्र, जिसने एक सहस्र मनुष्यों के साथ दीक्षा ली
थावच्चापुत्तो — थावच्चापुत्र
थासयावली — दर्पणों (आरसियों) की पंक्ति
थेरा — स्थविर भगवान्
थेराणं — स्थविर भगवन्तों का
थेरेहिं — स्थविरों के (से)
दस — दश
दसमे — दशवाँ, दशम
दसमो — दशम, दशवाँ
दाओ — दहेज
दारए — बालक
दारयं — बालक को
दिन्ना — दी हुई
दिवसं — दिन
दिसं — दिशा को
दीहदंते — दीर्घदन्तकुमार
दीहसेणे — दीर्घसेनकुमार
दुमसेणे — द्रुमसेन
दुमे — द्रुमकुमार
दुरूहंति — आरोहण करते हैं, चढ़ते हैं
दुरूहति — आरोहण करता है, चढ़ता है
दूरं — दूर
देवस्स — देव की
देवत्ताए — देव-रूप से
देव-लोगाओ — देवलोक से
देवाणुप्पियाणं — देवों के प्रिय (आप) का
देवाणुप्पिया — देवों के प्रिय (तुम)
देवी — राज-महिषी, पटरानी
देवे — देव

दोच्चस्स — दूसरे
दोण्हं — दो का
दोन्नि — दो का
धण्णस्स — धन्यकुमार या धन्य अनगार का
धण्णे (न्ने) — धन्य कुमार या अनगार
धण्णे — धन्य है
धण्णो (न्नो) — धन्य अनगार
धन्न — धन्यकुमार का नाम
धन्नस्स — धन्य कुमार या अनगार का
धम्म-कहा — धर्म-कथा
धम्म-जागरियं — धर्म-जागरण
धम्म-दएणं — श्रुत और चारित्र रूप धर्म देने वाले
धम्म-देसएणं — धर्म का उपदेश करने वाले
धम्म-वर-चाउरंत-चक्कवट्टिणा — उत्तम चारों दिशाओं पर अखंड शासन करने वाले उत्तम धर्म के चक्रवर्ती
धारिणी — श्रेणिक राजा की एक रानी
धारिणी-सुआ — धारिणी देवी के पुत्र
नंदादेवी — इस नाम वाली रानी
नगरी — नगरी
नगरीए — नगरी में
नगरे — नगर
नव — नौ
नवण्हं — नौ की
नवण्हवि — नौवों की
नवमस्स — नौवें का
नव-मास-परियातो — नौ महीने की संयमवृत्ति
नवमे — नौवाँ
नवमो — नौवाँ
नवरं — विशेषता-सूचक अव्यय
नामं — नाम वाला
नासाए — नासिका की, नाक की
निसम्म — ध्यानपूर्वक सुनकर
पंच — पाँच
पंचण्हं — पाँच का
पंच-धाति-परिक्खित्तो — पाँच धाइयों से घिरा हुआ
पंच-धाति-परिग्गहित — पाँच धाइयों द्वारा ग्रहण किया हुआ
पगति-भद्दए — प्रकृति से भद्र, सौम्य स्वभाव वाला
पग्गहियाए — ग्रहण की हुई, स्वीकार की हुई
पज्जुवासति — सेवा करता है
पडिगए — चला गया
पडिगओ — चला गया
पडिगता — चली गई
पडिगया — चली गई
पडिगाहेति — ग्रहण करता है
पडिग्गहित्तते — ग्रहण करने के लिए
पडिणिक्खमति — बाहर निकलता है
पडिदंसेति — दिखाता है
पडिबंध — प्रतिबन्ध, विघ्न, देरी
पढम-छट्ठ-क्खमण-पारणगंसि — पहले षष्ठ व्रत (बेले) के पारणे में
पढमस्स — पहले
पढमाए — पहली
पढमे — पहले (अध्ययन) में
पण्णग-भूतेणं — सर्प के समान
पण्ण (न्न) त्ता — प्रतिपादन किये हैं
पण्ण (न्न) त्ते — प्रतिपादन किया है, कहा है
पण्णा (न्ना) यंति — पहचाने जाते हैं
पत्त-चीवराइं — पात्रों और वस्त्रों को
पययत्ताए — अधिक यत्न वाली
परिनिव्वाण-वत्तियं — मृत्यु के उपलक्ष्य में किया जाने वाला
परियातो — संयम अवस्था या साधु-वृत्ति
परिवसइ (ति) — रहता है (थी)
परिसा — परिषद्, श्रोतृ-समूह
पलास-पत्ते — पलाश (ढाक) का पत्ता
पव्वइ(ति)ते — प्रव्रजित हुआ
पव्वयामि — प्रव्रजित हुआ हूँ, दीक्षा ग्रहण करता हूँ
पव्वाय-वदण-कमले — जिसका मुख-कमल मुरझा गया हो
पाउणित्ता — प्राप्त कर

पाउब्भूते — प्रकट हुआ
पांसुलि-कडएहिं — पसलियों की पंक्ति से
पांसुलिय-कडाणं — पार्श्वभाग की अस्थियों (हड्डियों) के कटकों को
पाणं — पानी
पाणावली — पाण — एक प्रकार के बर्तनों की पंक्ति
पाणि — हाथ
पात-जंघोरुणा — पैर, जंघा और उरुओं से
पादाणं — पैरों की
पाभातिय-तारिगा — प्रातःकाल का तारा
पायंगुलियाणं — पैरों की अँगुलियों का
पाय-चारेणं — पैदल चल कर
पाया — पैर
पारणयंसि — पारण करने पर, पारणा में
पासायवडिं(डें)सए(ते) — श्रेष्ठ महल में
पि — भी
पिट्ठि-करंडग-संधीहिं — पृष्ठ-करण्डक (पीठ के उन्नत प्रदेशों) की सन्धियों से
पिट्ठि-करंडयाणं — पीठ की हड्डियों के उन्नत प्रदेशों की
पिट्ठि-मवस्सिएणं — पीठ के साथ मिले हुए
पिट्ठिमाइया — पृष्ठिमातृककुमार
पिता (या) — पिता
पुच्छति — पूछता है
पोट्टिले — पोष्टिल्लकुमार
पुत्ते — पुत्र
पुन्नसेणे — पुण्यसेनकुमार
पुरिससेणे — पुरुषसेनकुमार
पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि — मध्यरात्रि के समय में
पुव्वरत्तावरत्तकाले — मध्यरात्रि में
पुव्वाणुपुव्वीए — क्रम से
पेढालपुत्ते — पेढालपुत्रकुमार
पेल्लए — पेल्लककुमार
पोरिसीए — पौरुषी, प्रहर, दिन या रात का चौथा भाग
फुट्टंतेहिं — बड़े जोर से बजाते हुए मृदङ्ग आदि वाद्यो के नाद से युक्त
बंभयारी — ब्रह्मचारी
बत्तीसं — बत्तीस
बत्तीसाए — बत्तीस
बत्तीसाओ — बत्तीस
बद्धीसग-छिड्डे — बद्धीसक नामक बाजे का छेद
बहवे — बहुत से
बहिया — बाहर
बहू — बहुत
बारस — बारह
बालत्तणं — बालकपन
बावत्तरिं — बहत्तर
बाहाणं — भुजाओं की
बाहाया-संगलिया — बाहाय नाम वाले वृक्षविशेष की फली
बाहाहिं — भुजाओं से
बिलमिव — बिल के समान
बीणा-छिड्डे — वीणा का छेद
बुद्धेणं — बुद्ध, ज्ञानवान्
बोद्धव्वे — जानना चाहिए
बोरी-करील्ल — बेर की कोंपल
बोहएणं — दूसरों को बोध कराने वाले
भंते — हे भगवन् !
भगवं — भगवान्
भगवंता — भगवान्
भगवता (या) — भगवान् ने
भगवतो — भगवान् का
भज्जणयकभल्ले — चने आदि भूनने की कढ़ाई
भत्तं — भात, भोजन
भद्दं — भद्रा सार्थवाही को
भद्दा — भद्रा नाम वाली
भद्दाए — भद्रा सार्थवाही का
भद्दाओ — भद्रा नाम वाली से
भन्नति — कहा जाता है
भवणं — भवन

भवित्ता — होकर
भाणियव्वं, व्वा — कहना चाहिए
भावेमाणे — भावना करते हुए
भासं — भाषा, बोल
भास-रासि-पलिच्छिन्ने — राख के ढेर से ढकी हुई
भासिस्सामि — बोलूंगा
भुक्खेणं — भूख से
भोग-समत्थे — भोग भोगने में समर्थ
मंस-सोणियत्ताए — मांस और रुधिर के कारण
मग्गदएणं — मुक्ति-मार्ग दिखाने वाले
मज्झे — बीच में
ममं — मेरा
मयालि — मयालिकुमार
मयूर-पोरा — मोर के पर्व (सन्धि-स्थान)
महता — बड़े भारी
महब्बले — महाबलकुमार
महाणिज्जरतराए — बहुत कर्मों की निर्जरा करने वाला
महा-दुक्कर-कारए — अत्यन्त दुष्कर तप करने वाला
महादुमसेणमाती — महाद्रुमसेन आदि
महादुमसेणे — महाद्रुमसेनकुमार
महाविदेहे — महाविदेह (क्षेत्र) में
महावीरं — भगवान् महावीर स्वामी को
महावीरस्स — महावीर स्वामी का
महावीरे — महावीर स्वामी
महावीरेणं — महावीर से
महासीहसेणे — महासिंहसेनकुमार
महासेणे — महासेनकुमार
मा — नहीं, निषेधार्थक अव्यय
माणुस्सए — मनुष्य सम्बन्धी
मातुलुंगपेसिया — मातुलुंग-बीजपूरक की फाँक
माया (ता) — माता
मास-संगलिया — उड़द की फली
मासिका — एक मास की
मिलायमाणी — मुरझाती हुई
मुंडावली — स्तम्भों की पंक्ति

मुंडे — मुण्डित
मुग्ग-संगलिया — मूंग की फली
मुच्छिया — मूर्च्छित
मूलाछल्लिया — मूली का छिलका
मेहो — मेघकुमार
मुक्केणं — स्वयं मुक्त हुए
मोयएणं — दूसरों को संसार-सागर से मुक्ति दिलाने वाले
य — और
रायगिहे — राजगृह नगर
राया — राजा
रिद्ध (द्धि ?) त्थिमिय-समिद्धे, रिद्धि — धन-धान्य से युक्त, भयरहित और सब प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त
लट्ठदंते — लष्टदन्तकुमार
लभति — प्राप्त करता है
लाउय-फले — तुम्बे का फल
लुक्ख — रूक्ष
लोग-नाहेणं — तीनों लोकों के स्वामी
लोग-पज्जोयगरेणं — लोकउद्योतकर, लोक में या लोक को प्रकाशित करने वाला
लोग-प्पदीवेणं — लोको में दीपक के समान प्रकाश करने वाले
वंदति — वन्दना करता है
वग्गस्स — वर्ग का
वग्गा — वर्ग
वट्टयावली — लाख आदि के बने हुए बच्चों के खिलोनो की पंक्ति
वड-पत्ते — वड़ का पत्ता
वत्तव्वया — वक्तव्य, विषय
वयासी — कहने लगा, बोला
वा — विकल्पार्थ-बोधक अव्यय
वारिसेणे — वारिसेनकुमार
वालुंक-छल्लिया — चिर्भटी की छाल
वावि (वा-अवि) — भी
वास — वर्ष

वासाइं, (तिं) — वर्ष तक
वासे — क्षेत्र में
विउलं — विपुलगिरि पर्वत
विगत-तडि-करालेणं — नदी के तट के समान भयंकर प्रान्त भागों से
विजए (ये) — विजय विमान में
विजय-विमाणे — विजय नामक विमान में
विपुलं — विपुलगिरि नामक पर्वत
विमाणे — विमान में
वियण-पत्ते — बाँस आदि का पंखा
विहरति — विचरण करता है
विहरामि — विचरण करता हूँ
विहरित्तते — विहार करने के लिए
वातिर्वातित्ता — व्यतिक्रान्त कर, अतिक्रमण कर, लांघकर
वुच्चति — कहा जाता है
वुत्तपडिवुत्तया — उक्ति-प्रत्युक्ति
वुत्ते — कहा गया है
वेजयंते — वैजयंत विमान में
वेवमाणीए — काँपती हुई
वेहल्ल-वेहायसा — वेहल्लकुमार और वेहायसकुमार
वेहल्लस्स — वेहल्लकुमार का
वेहल्ले — वेहल्लकुमार
वेहायसे — वेहायसकुमार
संचाएति — समर्थ होता है
संजमे — संयम में, साधुवृत्ति में
संजमेणं — संयम से
संपत्तेणं — मोक्ष को प्राप्त हुए
संलेहणा — संलेखना, शारीरिक व मानसिक तप द्वारा कषायादि का नाश करना, अनशन व्रत
संसट्ठं — भोजन से लिप्त (हाथों) आदि से दिया हुआ
सच्चेव — वही
सत्त — सात
सत्थवाहिं — सार्थवाही को
सत्थवाही — सार्थवाही, व्यापार में निपुण स्त्री
सद्धिं — साथ
समएणं — समय से (में)
समणं — श्रमण को
समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगा — श्रमण, माहन (श्रावक), अतिथि, कृपण और वनीपक (याचक विशेष)
समणस्स — श्रमण भगवान् का
समणे — श्रमण भगवान्
समणेणं — श्रमण भगवान् ने
समाणी — होने पर
समाणे — होने पर
समि-संगलिया — शमी वृक्ष की फली
समोसढे — पधारे, विराजमान हुए
समोसरणं — पधारना, तीर्थंकर का पधारना
सयं — अपने आप
सयं-संबुद्धेणं — अपने आप बोध प्राप्त करने वाले
सरण-दएणं — शरण देने वाले
सरिसं — समान
सरीर-वन्नओ — शरीर का वर्णन
सल्लति-करिल्ले — शल्य वृक्ष की कोंपल
सव्वट्ठसिद्धे — सर्वार्थसिद्ध विमान में
सवत्थ — सर्वत्र, सब के विषय में
सव्वो — सब
सव्वोदुए — सब ऋतुओं में हरा-भरा रहने वाला
सहस्संबवणे — सहस्राम्रवन नाम वाला एक बगीचा
सहस्संबवणातो — सहस्राम्रवन उद्यान से
सा — वह
साएए — साकेतपुर में
साग-पत्ते — शाक का पत्ता
सागरोवमाइं — सागरोपम, काल का एक विभाग
साम-करिल्ले — प्रियंगु वृक्ष की कोंपल
सामन्न-परियागं — साधु का पर्याय, साधु का भाव, संयम-वृत्ति
सामन्न-परियातो — संयम-वृत्ति
सामली-करिल्ले — सेमल वृक्ष की कोंपल

सामाइयमाइयाइं — सामायिक आदि
सामी — स्वामी
साहस्सीणं — सहस्रों में (सहस्रों का)
सिज्झणा — सिद्धि
सिज्झहिति — सिद्ध होगा
सिढिल-कडाली — ढीली लगाम
सिण्हालए — सेफालक नामक फल विशेष
सिद्धि-गति-नामधेयं — सिद्धि गति नाम वाले
सिलेस-गुलिया — श्लेष्म की गुटिका
सिवं — कल्याणरूप
सीस — शिर
सीस-घडीए — शिररूपी घट से
सीसस्स — शिर की
सीहसेणे — सिंहसेनकुमार
सीहे — सिंहकुमार
सीहो — सिंह, शेर
सुकयत्थे — सुकृतार्थ, सफल
सुक्कं — सूखा हुआ
सुक्कं-छगणिया — सूखा हुआ गोबर, गोहा-छाणा
सुक्क-छल्ली — सूखी हुई छाल
सुक्कदिए — सूखी हुई मशक
सुक्क-सप्प-समाणाहिं — सूखे हुए सर्प के समान
सुक्का — सूखी हुई, सूखे हुए
सुक्कातो — सूखी हुई से
सुक्केणं — सूखे हुए
सुणक्खत्त-गमेणं — सुनक्षत्र के समान
सुणक्खत्तस्स — सुनक्षत्र के
सुणक्खत्ते — सुनक्षत्रकुमार
सुपुण्णे — अच्छे पुण्य वाला
सुमिणे — स्वप्न में
सुरूपे — सुन्दर, अच्छे रूप वाला
सुलद्धे — अच्छी तरह से प्राप्त
सुहम्मस्स — सुधर्म नामक गणधर का
सुहम्मे — सुधर्मस्वामी
सुहुय० (सुहुय-हुयासण इव) — अच्छी तरह से जली हुई अग्नि के समान
सुद्धदंते — शुद्धदन्तकुमार
से — वह, उसके
से — अथ, प्रारम्भ-बोधक अव्यय
सेणिए (ते) — श्रेणिक राजा
सेणिओ — श्रेणिक राजा
सेणिया — हे श्रेणिक !
सेसं — शेष (वर्णन), बाकी
सेसा — शेष
सेसाणं — शेषों का
सेसाणवि — शेषों का भी
सेसावि — शेष भी
सोच्चा — सुनकर
सोणियत्ताए (ते) — रुधिर के कारण
सोलस — सोलह
सोहम्मीसाण — सौधर्म और ईशान नामक पहला और दूसरा देवलोक
हकुब-फले — हकुब वनस्पति विशेष का फल
हट्ठ-तुट्ठ — प्रसन्न और सन्तुष्ट
हणुयाए — चिबुक, ठोड़ी की
हत्थंगुलियाणं — हाथों की अंगुलियो की
हत्थाणं — हाथों की
हत्थिणापुरे — हस्तिनापुर में
हल्ले — हल्लकुमार
हुयासणे (इव) — अग्नि के समान
होति — होते हैं
होत्था — था, थी



अनध्यायकाल

[स्व. आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म. द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमों में जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल में स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियों में भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायों का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या संयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमों में अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अंतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, तं जहा — उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, तं जहा — अट्ठी, मंसं, सोणिते, असुचिसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

— स्थानाङ्गसूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झायं करित्तए, तं जहा — आसाढपाडिवए, इंदमहपाडिवए कत्तिअपाडिवए सुगिम्हपाड़िवए। नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, चउहिं संझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा — पढिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे अड्ढरत्ते। कप्पई निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा, चाउक्कालं सज्झायं करेत्तए, तं जहा — पुव्वण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

— स्थानाङ्गसूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं, जिनका संक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे —

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात-तारापतन — यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

२. दिग्दाह — जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

३. गर्जित — बादलों के गर्जन पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४. विद्युत — बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गर्जन और विद्युत का अस्वाध्याय चातुर्मास में नहीं मानना चाहिए। क्योंकि वह गर्जन और विद्युत प्रायः ऋतु स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नहीं माना जाता।

५. **निर्घात** — बिना बादल के आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर, या बादलों सहित आकाश में कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. **यूपक** — शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया की सन्ध्या, चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

७. **यक्षादीप्त** — कभी किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा, थोड़े-थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अतः आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

८. **धूमिका-कृष्ण** — कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमें धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

९. **मिहिकाश्वेत** — शीतकाल में श्वेत वर्ण का सूक्ष्म जलरूप धुन्ध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. **रज-उद्घात** — वायु के कारण आकाश में चारों ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३. **हड्डी, मांस और रुधिर** — पंचेन्द्रिय तिर्यच की हड्डी, मांस और रुधिर यदि सामने दिखाई दे, तो जब तक वहाँ से वह वस्तुएँ उठाई न जाएँ, तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस-पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, मांस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एवं बालिका का अस्वाध्याय क्रमशः सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. **अशुचि** — मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. **श्मशान** — श्मशानभूमि के चारों ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. **चन्द्रग्रहण** — चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७. **सूर्यग्रहण** — सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमशः आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन — किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसंस्कार न हो तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो तब तक शनैः शनैः स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह — समीपस्थ राजाओं में परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नहीं करें।

२०. औदारिक शरीर — उपाश्रय के भीतर पंचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पड़ा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पड़ा हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये हैं।

२१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा — आषाढपूर्णिमा, आश्विनपूर्णिमा, कार्तिकपूर्णिमा और चैत्रपूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओं के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमें स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रातः सायं मध्याह्न और अर्धरात्रि — प्रातः सूर्य उगने से एक घड़ी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घड़ी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर में एक घड़ी आगे और एक घड़ी पीछे एवं अर्धरात्रि में भी एक घड़ी आगे तथा एक घड़ी पीछे स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।



श्री आगमप्रकाशन-समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरड़िया, मद्रास
२. श्री गुलाबचन्दजी मांगीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३. श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरड़िया, बैंगलोर
५. श्री प्रेमराजजी भंवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६. श्री एस. किशनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
७. श्री कंवरलालजी बैताला, गोहाटी
८. श्री सेठ खींवराजजी चोरड़िया मद्रास
९. श्री गुमानमलजी चोरड़िया, मद्रास
१०. श्री एस. बादलचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
११. श्री जे. दुलीचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१२. श्री एस. रतनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१३. श्री जे. अन्नराजजी चोरड़िया, मद्रास
१४. श्री एस. सायरचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१५. श्री आर. शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१६. श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१७. श्री जे. हुक्मीचन्दजी चोरड़िया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१. श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२. श्री जसराजजी गणेशमलजी संचेती, जोधपुर
३. श्री तिलोकचंदजी, सागरमलजी संचेती, मद्रास
४. श्री पूसालालजी किस्तूरचंदजी सुराणा, कटंगी
५. श्री आर. प्रसन्नचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
६. श्री दीपचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
७. श्री मूलचन्दजी चोरड़िया, कटंगी
८. श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९. श्री मांगीलालजी मिश्रीलालजी संचेती, दुर्ग

संरक्षक

१. श्री बिरदीचंदजी प्रकाशचंदजी तलेसरा, पाली
२. श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३. श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेड़ता सिटी
४. श्री श. जड़ावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपड़ा, ब्यावर
६. श्री मोहनलालजी नेमीचन्दजी ललवाणी, चांगाटोला
७. श्री दीपचंदजी चन्दनमलजी चोरड़िया, मद्रास
८. श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चांगाटोला
९. श्रीमती सिरेकुँवर बाई धर्मपत्नी स्व. श्री सुगनचन्दजी झामड़, मदुरान्तकम्
१०. श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (KGF) जाड़न
११. श्री थानचन्दजी मेहता, जोधपुर
१२. श्री भैरूदानजी लाभचन्दजी सुराणा, नागौर
१३. श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४. श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
१५. श्री इन्द्रचन्दजी बैद, राजनांदगांव
१६. श्री रावतमलजी भीकमचन्दजी पगारिया, बालाघाट
१७. श्री गणेशमलजी धर्मीचन्दजी कांकरिया, टंगला
१८. श्री सुगनचन्दजी बोकड़िया, इन्दौर
१९. श्री हरकचन्दजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२०. श्री रघुनाथमलजी लिखमीचन्दजी लोढ़ा, चांगाटोला
२१. श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चांगाटोला

२२. श्री सागरमलजी नोरतमलजी पींचा, मद्रास
२३. श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
२४. श्री केशरीमलजी जंवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५. श्री रतनचन्दजी उत्तमचन्दजी मोदी, ब्यावर
२६. श्री धर्मीचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, झूंठा
२७. श्री छोगामलजी हेमराज़जी लोढ़ा डोंडीलोहारा
२८. श्री गुणचंदजी दलीचंदजी कटारिया, बेल्लारी
२९. श्री मूलचन्दजी सुजानमलजी संचेती, जोधपुर
३०. श्री सी. अमरचन्दजी बोथरा, मद्रास
३१. श्री भंवरलालजी मूलचन्दजी सुराणा, मद्रास
३२. श्री बादलचंदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३. श्री लालचंदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपड़ा, अजमेर
३५. श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
३६. श्री भंवरीमलजी चोरड़िया, मद्रास
३७. श्री भंवरलालजी गोठा, मद्रास
३८. श्री जालमचंदजी रिखबचंदजी बाफना, आगरा
३९. श्री घेवरचंदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४०. श्री जबरचन्दजी गेलड़ा, मद्रास
४१. श्री जड़ावमलजी सुगनचन्दजी, मद्रास
४२. श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३. श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४. श्री लूणकरणजी रिखबचंदजी लोढ़ा, मद्रास
४५. श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१. श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेड़तासिटी
२. श्रीमती छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३. श्री पूनमचन्दजी नाहटा, जोधपुर
४. श्री भंवरलालजी विजयराजजी कांकरिया, विल्लीपुरम्
५. श्री भंवरलालजी चौपड़ा, ब्यावर
६. श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७. श्री बी. गजराजजी बोकड़िया, सेलम
८. श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी कांठेड, पाली
९. श्री के. पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१०. श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११. श्री मोहनलालजी मंगलचंदजी पगारिया, रायपुर
१२. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३. श्री भंवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४. श्री उत्तमचंदजी मांगीलालजी, जोधपुर
१५. श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६. श्री सुमेरमलजी मेड़तिया, जोधपुर
१७. श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टांटिया, जोधपुर
१८. श्री उदयराजजी पुखराजजी संचेती, जोधपुर
१९. श्री बादरमलजी पुखराजजी बंट, कानपुर
२०. श्रीमती सुन्दरबाई गोठी धर्मपत्नीश्री ताराचंदजी गोठी, जोधपुर
२१. श्री रायचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२. श्री घेवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
२३. श्री भंवरलालजी माणकचंदजी सुराणा, मद्रास
२४. श्री जंवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५. श्री माणकचंदजी किशनलालजी, मेड़तासिटी
२६. श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७. श्री जसराजजी जंवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९. श्री नेमीचंदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३०. श्री ताराचंदजी केवलचंदजी कर्णावट, जोधपुर
३१. श्री आसूमल एण्ड कं , जोधपुर
३२. श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३. श्रीमती सुगनीवाई धर्मपत्नी श्री मिश्रीलालजी सांड, जोधपुर

३४. श्री वच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
३५. श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६. श्री देवराजजी लाभचंदजी मेड़तिया, जोधपुर
३७. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८. श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टांटिया, जोधपुर
३९. श्री मांगीलालजी चोरड़िया, कुचेरा
४०. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१. श्री ओकचंदजी हेमराजजी सोनी, दुर्ग
४२. श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३. श्री घीसूलालजी लालचंदजी पारख, दुर्ग
४४. श्री पुखराजजी बोहरा,(जैन ट्रान्सपोर्ट कं.)-जोधपुर
४५. श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६. श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बैंगलोर
४७. श्री भंवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८. श्री लालचंदजी मोतीलालजी गादिया, बैंगलोर
४९. श्री भंवरलालजी नवरत्नमलजी सांखला, मेट्टूपलियम
५०. श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१. श्री आसकरणजी जसराजजी पारख, दुर्ग
५२. श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३. श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेड़तासिटी
५४. श्री घेवरचंदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५ श्री मांगीलालजी रेखचंदजी पारख, जोधपुर
५६. श्री मुन्नीलालजी मूलचंदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७. श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८. श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेड़ता-सिटी
५९. श्री भंवरलालजी रिखबचंदजी नाहटा, नागौर
६०. श्री मांगीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
६१. श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया कलां
६२. श्री हरकचंदजी सुगराजजी बाफना, बैंगलोर
६३. श्री चन्दनमलजी प्रेमचंदजी मोदी, भिलाई
६४. श्री भींवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५. श्री तिलोकचंदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६. श्री विजयलालजी प्रेमचंदजी गुलेच्छा राज-नांदगाँव
६७. श्री रावतमलजी छाजेड़, भिलाई
६८. श्री भंवरलालजी डूंगरमलजी कांकरिया, भिलाई
६९. श्री हीरासलालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
६०. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसंघ, दल्ली-राजहरा
७१. श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२. श्री गंगारामजी इन्दचंदजी बोहरा, कुचेरा
७३. श्री फतेहराजजी नेमीचंदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४. श्री बालचंदजी थानचन्दजी भुरट, कलकत्ता
७५. श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६. श्री जवरीलालजी शांतिलाली सुराणा, बोलारम
७७. श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७५. श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९. श्री माणकचंदजी रतनलालजी मुणोत, टंगला
८०. श्री चिम्मिनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर
८१. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी
८२. श्री पारसमलजी महावीरचंदजी बाफना, गोठन
८३. श्री फकीरचंदजी कमलचंदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४. श्री माँगीलालजी मदनलालजी चोरड़िया, भैरूंदा
८५. श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६. श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जंवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७. श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
८८. श्री चम्पालालजी हीरालालजी [illegible], जोधपुर

८९. श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९०. श्री इन्द्रचन्दजी मुकनचन्दजी, इन्दौर
९१. श्री भंवरलालजी बाफना, इन्दौर
९२. श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३. श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४. श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भंडारी, बैंगलोर
९५. श्रीमती कमलाकंवर ललवाणी धर्मपत्नी स्व. श्री पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६. श्री अखेचन्दजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७. श्री सुगनचन्दजी संचेती, राजनांदगाँव
९८. श्री प्रकाशचंदजी जैन, नागौर
९९. श्री कुशालचंदजी रिखबचन्दजी सुराणा, बोलारम
१००. श्री लक्ष्मीचंदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१. श्री गूदड़मलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२. श्री तेजराजजी कोठारी, मांगलियावास
१०३. श्री सम्पतराजजी चोरड़िया, मद्रास
१०४. श्री अमरचंदजी छाजेड़, पादु बड़ी
१०५. श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६. श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७. श्रीमती कंचनदेवी व निर्मला देवी, मद्रास
१०८. श्री दुलेराजजी भंवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९. श्री भंवरलालजी मांगीलालजी बेताला, डेह
११०. श्री जीवराजजी भंवरलालजी चोरड़िया, भैरूंदा
१११. श्री माँगीलालजी शांतिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२. श्री चांदमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३. श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४. श्री भूरमलजी दुलीचंदजी बोकड़िया, मेड़ता-सिटी
११५. श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६. श्रीमती रामकुंवरबाई धर्मपत्नी श्री चांदमलजी लोढा, बम्बई
११७. श्री माँगीलालजी उत्तमचंदजी बाफणा, बैंगलोर
११८. श्री सांचालालजी बाफणा, औरंगाबाद
११९. श्री भीखमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर)मद्रास
१२०. श्रीमती अनोपकुंवर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी संघवी, कुचेरा
१२१. श्री सोहनलालजी सोजतिया, थांवला
१२२. श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३. श्री भीखमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४. श्री पुखराजी किशनलालजी तातेड़, सिकन्दराबाद
१२५. श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया, सिकन्दराबाद
१२६. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, बगड़ीनगर
१२७. श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाड़ा
१२८. श्री टी. पारसमलजी चोरड़िया, मद्रास
१२९. श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड कं., बैंगलोर
१३०. श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड़

□□